Chap-9

नवम् अध्याय

रचनाकार

प्रमुख हस्ताक्षर : विशिष्ट योगदान

डॉ. शम्भुनाथ सिंह :

१९१७ ई. में उत्तर प्रदेश में जन्म लिए डॉ. शम्भुनाथ सिंह की भूमिका नवगीत की विकास-यात्रा में सर्वाधिक बहुमुखी है। काव्य सर्जना के अतिरिक्त वे आलोचना एवम् सम्पादन कार्य से भी संलग्न रहे हैं। डॉ. शम्भुनाथ सिंह प्रतिनिधि नवगीतकार हैं जिन्होंने छायावादी अनुभूति-कुहासे को चीरकर मुक्त दृष्टि से जीवन और मनुष्य को देखने-परखने का नवीन प्रयत्न किया है। उनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ रूपरश्मि, छायालोक, मन्वन्तर, उदयाचल, दिवालोक, समय की शिलापर, खण्डित सत्य, काव्य-संकलनों के अन्तर्गत संग्रहीत हैं। इन कृतियों में प्रणय और प्रकृति-चित्रों के परिवेश जहाँ छायावादी स्वप्निल संसार का विचरण तथा भावुकता के अयथार्थवादी क्षणों की घनीभूत छाया का बाहुल्य है, वहाँ वेदना और नैराश्य की स्वीकृति से उत्पन्न भावाभिव्यक्ति तथा यौवन के सहज आत्मिक फलों की अनुभूति का व्यापक फलक भी दृष्टिगोचर होता है। 'रूप-रश्मि' में प्रणय संयोग का नहीं, प्रत्युत वियोग का सूचक बनकर अपना परिचय प्रदान कर सका है। यही कारण है कि, इन गीतों में विरह जन्य अनुभूतियों की प्रमुखता है। 'छायालोक' में भी भावनाओं का उपर्युक्त क्रम ही विद्यमान है किन्तु यहाँ वेदना, व्यथा और अभाव के उतने प्रगाढ़ दृश्य नहीं हैं। संयोग-सुख के लिए आकुल कवि के हृदय की वियोग जनित अनुभूतियाँ यहाँ भी बड़ी ही स्पष्टता से अभिव्यक्त हुई हैं तथा अपने प्रणय के प्रति कवि की गहन निष्ठा का भी उतना ही तीव्र निदर्शन हुआ है। कवि-प्रेम और प्रकृति-सम्बन्धी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का मौलिक उदय 'उदयाचल' में दिखाई देता है, जहां कवि प्राचीनतम भावनाओं की केंचुल छोड़कर जीवन के कर्मक्षेत्र से पलायन नहीं करता बल्कि यथार्थ का सामना करते हुए संघर्षों के धुन्ध को चीरने की तीव्र भावना से लालायित कुछ कर गुज़रने का संकल्प लेता हुआ दिखाई पड़ता

है । जीवन के प्रति उसकी यथार्थ संकल्पनात्मक दृष्टि स्वस्थ स्वाभाविक सौन्दर्य-बोध को जन्म देती है । अस्वस्थ, वीतराग मन की पलायनवादी वृत्तियों का विकृत संगीत इन गीतों की मूलचेतना से कोसों दूर है । 'मन्वन्तर' के गीतों को पढ़ कर लगता है कि कवि सैद्धान्तिक आग्रहों की कुहेलिका में जानबूझ कर घिरा है । गीतकार की सहजता से कवि यहाँ स्वयं ही पीछा छुड़ाता प्रतीत होता है । गीतकार की अपेक्षा यहाँ कवि प्रचारक अधिक है । संवेदना की आँच यहाँ मधुर नहीं लगती, मानवीय तत्वों का पूर्वाग्रह कवि की प्रभावोत्पादक गीत-क्षमता को संकुल बनाये है । 'दिवालोक' कवि की प्रौढ़ काव्य-कृति है । 'माध्यम मैं' में कवि 'नवगीत' परम्परा के अधिक समीप आया है । युगानुभूति के प्रति कवि की जागरूकता और सजगता बढ़ गयी है । मनुष्य के कोमलतम भावनाओं का संस्पर्श, आंचलिक जीवन का समग्र बोध और देश की करुण-कहानी इस संग्रह में प्रतिगुंजित हुई है जो कवि को विशिष्ट स्थान प्रदान करती है ।

शम्भुनाथ सिंह के गीतों में छायावादी संस्कार से लेकर नवयुग की पहचान और उसके अन्तर्बोध तक व्याप्त हैं । लोकरुचि के अछूति सामर्थ्य को कवि ने सहानुभूति के साथ ग्रहण किया है । उनकी रचनाओं में लोकधुनों की संगीत धारा प्रवाहमान है । लोक-धुनों पर आश्रित गीतों में संगीत की लहरें शब्द में पची हुई रहती हैं -

"छिप-छिपकर चलती पगडंडी वन-खेतों की छाँव में ।
अनगाये कुछ गीत गूँजते
हैं किरनों के हास में,
अकुलायी-सी एक बुलाहट
पुरवा की हर साँस में ।
सूनापन है उसे छेड़ता छू आँचल के छोर को,
जलखाते भी बुला रहे हैं बादल वाली नाव में ।
अंग-अंग में लचक उठी ज्यों
तरुणाई की भोर में,
नभ के सपनों की छाया को
आंज नयन की कोर में ।
राह बनाती अपनी कुस-कांटों में संख-सिवार में,
कांदो-कीच पड़े रह जाते, लिपट-लिपट कर पांव में ।"[१]

डॉ. शम्भुनाथ सिंह के गीतों में हृदय की भावुकता का निर्बाध स्रोत का सोता फूट पड़ा है। "अपनी कुशल गीति-कला का परिचय देते हुए उन्होने अपनी समृद्ध विविध रंगी कल्पना का योग कर उनको और अधिक आकर्षक बना दिया है । उनकी सामाजिक चेतना ने अपनी गीत-सृष्टि के माध्यम से जागरूकता का उद्घोष किया है । उनकी सामाजिक चेतना समन्वित युगानुकूल लचक के साथ ऐसे विषयों को समाहित करती चली है, जिसकी मांग तत्कालीन परिस्थितियाँ कर रही थीं ।"[२]

सम्पूर्ण नवगीत-काव्य को वृहत् परिप्रेक्ष्य प्रदान करने के लिए उन्होने प्रतिनिधि नवगीतों के सम्पादन

का जो गुरू उत्तरदायित्व निभाया है, उसका हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय स्थान रहेगा। एक आलोचक के रूप में डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत पर बहुत अधिक नहीं लिखा है, किन्तु जितना लिखा है-वह नवगीत के स्वरूप को नष्ट करने में बहुत सहायक हुआ है। 'नवगीत दशक-१' की भूमिका में उन्होंने उन परिस्थितियों का विवेचन-विश्लेषण किया है, जिनके बीच से नवगीत का उद्भव हुआ है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नवगीत न कभी काव्यान्दोलन था, न आज है; वह तो नयी कविता का जुड़वा भाई है। 'नवगीत दशक-२' की भूमिका में उन्होंने नवगीत पर अपेक्षतया विस्तृत विचार विमर्श किया है। हिन्दी गीत की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से वे नवगीत के विकास को स्पष्ट करते हैं तथा उसकी विशिष्टताओं का निर्धारण करते हैं। 'नवगीत दशक-३' में वे नवगीत के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता के भविष्य की चर्चा करते हैं और प्रमाणित करते हैं कि, नवगीत वर्तमान हिन्दी-कविता की वह प्राणवान धारा है जो हिन्दी कविता का भविष्य निर्धारित कर सकेगी। एक आलोचक के रूप में उनकी ये मान्यताएँ नवगीत-काव्य के विकास में सहयोगी भूमिका निभाएंगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

पिछले दशक में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शम्भुनाथ सिंह के जो गीत प्रकाशित हुए, उनमें 'व्यंग्य' का स्वर प्रमुख है। कहीं आत्मव्यंग्य के माध्यम से सामयिक जीवन की विसंगतियों के उद्घाटित किया गया है, तो कहीं व्यवस्था को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है। उनके गीतों की अन्य महत्वपूर्ण विशिष्टता है - नगर-बोध की तीखी अभिव्यक्ति। सहज एवम् निश्छल ग्रामीण जीवन की जो परिणति नगरों में हुई है, वह बहुत करुण एवम् त्रासद है, इस छद्म को कवि ने बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है -

"सोन हँसी हँसते हैं लोग
हँस-हँसकर डँसते हैं लोग
    रस की धारा झरती है
    विष पिये हुए अधरों से,
    विंध जाती भोली आंखें,
    विषकन्या-सी नज़रों से !
नागफनी की बाँहों में
हँस-हँसकर कसते हैं लोग ।...
    चुन दिये गये हैं जो लोग
    नगरों की दीवारों में
    खोज रहे हैं अपने को
    वे ताज़ा अखबारों में
भूतों के इन महलों में
हँस-हँसकर बसते हैं लोग ।
    वे, हम, तुम और ये सभी
    लगते कितने प्यारे लोग !

पर कितने तीखे नाखून
रखते हैं ये सारे लोग
खूनी दाढ़ों में सबको
हँस-हँसकर ग्रसते हैं लोग ।''[३]

शम्भुनाथ सिंह के गीतों में प्रयुक्त होने वाले बिम्ब अप्रस्तुत-सापेक्ष नहीं है, जितने वे प्रतीक-सम्पन्न हैं । परिणामतः उनके बिम्बों में वह वस्तुपरकता विद्यमान है । भाषा के सम्बन्ध में कवि की विचारधारा स्पष्ट है । एक ओर वे सहज एवम् बोलचाल की भाषा को गीत के उपयुक्त मानते हैं, दूसरी ओर उनका आग्रह आंचलिक एवम् लोकपरक शब्दावली की ओर रहा है । अपने समकालीन कवियों की तुलना में बोधगत आधुनिकता एवम् प्रगतिशील चेतना उनमें विद्यमान रही है; उसी के बल पर वे नवगीत धारा को अपना उल्लेखनीय योगदान दे सके हैं । कहना न होगा कि उनके गीतों की भाव-प्रवणता, अनुभूतियताँ एवम् कल्पना की सहज रंगीनी ने उन्हें हिन्दी के प्रतिनिधि एवम् महत्वपूर्ण गीतकारों में प्रतिष्ठित ही नहीं किया, अपितु अग्रिम पंक्ति में आलेखित भी कर दिया है ।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' :

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' उन नवगीतकारों में से है, जो एक लम्बे समय तक अघोषित साधना करने के पश्चात् आठवें दशक में एक सशक्त नवगीतकार के रूप में अभिस्वीकृति पाने में सफल रहे हैं। यों तो सन् १९५८ में 'ताज की छाया में" प्रकाशित उनके गीत अभिनव शिल्प एवम् संवेदना का प्रमाण लेकर उपस्थित हुए थे तथा तत्कालीन पत्रिकाओं में उनके गीतों का प्रकाशन नियमित रूप से होता रहा । उनकी गीत-रचनाओं का अविरल प्रकाशन १९७० ई. से देखा जा सकता है । देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का प्रथम गीत-संग्रह, 'पथरीले शोर में' १९७२ में प्रकाशित हुआ था । तदुपरान्त 'पंख कटी महराबें' (१९७८), कुहरे की प्रत्यंचा (१९७९) और कालजयी (खण्ड काव्य-१९७७) भी प्रकाशित हुए । नवगीत दशक-१ में भी उनके गीत सम्मिलित हुए । उनके द्वारा सम्पादित 'यात्रा में साथ-साथ' नामक नवगीत संकलन में उनके कई गीत संकलित हैं । ''श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीत-काव्य का मूल्यांकन व्यापक दृष्टि की अपेक्षा रखता है । इनके काव्य में युगीन त्रासदी, प्राकृतिक अभिनवता, सामाजिक जीवन का विद्रूप, साहित्य जग का छद्म, मानवीय सम्बन्धों की अस्मिता, व्यक्तिगत जीवन की विडम्बनाएँ तथा छूटे हुए सन्दर्भों की स्मृति आदि अनेक विषयों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है परन्तु सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनके काव्य में इन विषयों की अभिव्यक्ति के लिए जो शिल्प प्रयुक्त हुआ है, उसकी विविधता एवू गहनता उसकी असीम समृद्धि का आधार बनी है ।''[४]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों का धरातल आत्मकेन्द्रित नहीं है अपितु वैयक्तिक कुण्ठा, प्रतिनिवेदन, प्रकृति चित्रण की ज़मीन तोड़कर जीवन के कटु एवम् विक्त सत्यों को आधुनिक संवेदना से जोड़कर पेश करता है । महानगरीय संत्रास को जताने के लिए कवि व्यंग्य के सहारे गहरा उतरा है । दैनिक जीवन की विद्रूपताओं, विसंगतियों के नंगेपन को व्यक्त करने के लिए गीतकार ने व्यंग्य का तेवर अख्तियार किया है । मूल्य-विघटन की खतरनाक दल-दल को कवि ने मिथकों, प्रतीकों, बिम्बों का सहारा लेकर दृश्यांकित किया है -

"उज्जयिनी के राजमार्ग पर
भटकें चन्द्रापीड़
राजा की दुर्गति
कौतुक से देख रही है भीड़
    काम नहीं आ पाया
    प्रवचन
    महात्म्य शुकवास का
    आगत, विगत, अनागत
    सब पर
    चक्र चला इतिहास का
कौंध रही बिजलियाँ घनों में
धू-धू जलते नीड़ ।
    घर लगता
    बसन्तसेना का
    लुटे हुए प्रासाद-सा
    धरे हाथ-पर-हाथ
    हेरते
    चारू दत्त यह हादसा
घिसी हुई कौड़ी-सी आँखें
झुकी-झुकी सी रीढ़ ।"[५]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की भाव-भाषा अधिक समृद्ध है । काव्य के अनुरूप भाषा का रूप भी बदलता जाता है । उनकी भाषा में सपाटबयानी भी है और लक्षणा-व्यंजना का आध्यारोपण भी हुआ है किन्तु वह नयी कविता की सपाट शैली व बड़बोलेपन से तथा छायावादी कुहरिल शैली से सर्वथा भिन्न है । कवि का मानना है कि छन्द नवगीत के बाह्य अंग से जुड़ा हुआ है किन्तु उससे भी अधिक वह नवगीत की आन्तरिक और रागात्मक संवेदना से सम्पन्न है ।

गीत-साधना के अतिरिक्त नवगीतकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने नवगीत के समीक्षात्मक आसंगों को लेकर समय-समय पर ठोस और शोधपूर्ण सामग्री हिन्दी-साहित्य को प्रदान किये हैं । इनकी मौन साधना के कारण ही एक प्रबन्ध-काव्य 'मैं साक्षी हूँ, दीन नवगीत-संग्रह तथा दो ग़ज़ल-संग्रह प्रकाश में आये हैं । इनके गीतों में जीवन के साथ जुड़ने की ऊर्जा है । इनके नवगीतों की अतिरिक्त विशेषता, 'बौद्धिकता का समावेश है जो वर्तमान समय के गीतों की अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है । क्योंकि इसके बगैर साम्प्रतिक जीवन की स्थितियों का यथार्थ-आकलन-विश्लेषण और विवेचन प्रायः मुश्किल होता है । कवि ने गीतों में अर्थहीन कोलाहल को सार्थक लयात्मकता प्रदान की है । नयी कविता की तरह उनके गीतों का तेवर आक्रामक नहीं है -

"आज के सवालों को
अनजाने कल पर हम
यों कब तक टालते रहें ?
निर्णय तो लेना होगा कुछ भी
इस या उस पार का,
आँधी में किसका विश्वास करें
इस टूटी नौका; या
बारूदी ज्वार का ।"[६]

वीरेन्द्र मिश्र :

वीरेन्द्र मिश्र की दृष्टि में गीत-धर्मिता आम आदमी के अधिक समीप है, यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति अधिक जटिल है, इसी कारण वे भाषा को कथ्य के अनुरूप ढालते हुए सस्वर हो जाते हैं । तीन दशकों से भी अधिक समय तक गीत से प्रतिबद्ध रहकर श्री वीरेन्द्र मिश्र ने न केवल रचना के धरातल पर इसे समृद्धि प्रदान की, अपितु इसके पक्ष में सैद्धान्तिक धरातल पर भी उन्होंने लम्बा संघर्ष किया है।

अविराम चल मधुवन्ती (१९६७), लेखनी बेला (१९५७) तथा गीतम (१९५३), गीत संग्रहों में वीरेन्द्र मिश्र के श्रेष्ठ गीत विद्यमान हैं । इनके अन्य प्रकाशित गीत संकलन - 'झुलसा है छायानट धूप में (१९८०), 'धरती गीताम्बरा (१९८०), तथा 'शांति गंधर्व (१९८४)' हैं । इनके अतिरिक्त उनके अनेक गीत पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होते रहे हैं । कवि द्वारा संकेतित अन्य अप्रकाशित संकलन हैं - 'शनि गांधार', 'सेतु-संगीत', 'जल रही है चारुकेशी', 'सिन्धु भैरवी', 'आखत ध्रुपद' तथा 'अंतरा और अन्तराल' । मिश्र जी के गीतों की अनेक भंगिभाएँ हैं । उन्होंने बालगीत भी लिखे हैं, राष्ट्रगीत भी तथा कुछ फिल्मों के लिए भी गीत रचना की है । इनके गीत आधुनिक गीत-पद्धति में संगीत के संस्कारों के साथ लिखे गये हैं । गीतों में बौद्धिक व्यंजनाएँ और निष्पत्तियाँ कवि की अनुभूति से प्रच्छन्न होकर आयी हैं । मिश्र जी के गीतों में एक साथ युगीन कटुता, संत्रास और भोगे हुए यथार्थ का सुलझा हुआ आसव प्राप्त होता है । कवि महानरीय संत्रास को वहाँ के गली-कूचे में मंडराते विद्रोह और असन्तोष को तीक्ष्ण ढंग से न कहकर कोमलता के साथ सहेजता है । व्यंग्य वीरेन्द्र जी के गीतों को अन्जाने ही प्रभावोत्पादक बनाता है ।

गीत संग्रह 'गीतम' के गीतों में भावनाओं की गम्भीरता और सरल व्यंजना है । सुबोध संगीत-शैली का मिश्रण आनुभूतिक स्तर को ताज़गी देता है । सामाजिक भावना से भरा हुआ कवि प्रत्येक चरण में मानवता को संवेदना की शक्ति से पहचानता है । सीमित परिधि में युग-जागरण और आत्मसजगता को दृष्टि-बिन्दु तक लाकर उसे निष्ठा के साथ साकार करने में कवि सफल हुआ है । वह युद्ध का विरोधी है और शांति का समर्थक । राष्ट्र के प्रति निष्ठा, पूँजीवाद का विरोध, विश्व बन्धुत्व की कल्पना और अमानवीय तत्वों का विरोध वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में जगह-जगह पर टपकता है । कवि का सौन्दर्य और प्रणय-लालसा से सम्पृक्त अन्तःमानस गीतों में छलक पड़ा है । पीड़ा और व्यथा की आकुलता

को भी कहीं-कहीं अकृत्रिमता से व्यक्त किया गया है । दूसरे गीत-संग्रह 'लेखनी-बेला' में कवि ने विभिन्न गतिविधियों की अनुभूतियों के अन्तर और व्यक्तित्व को उद्‌भाषित करने की अपूर्व क्षमता का परिचय देते हुए नवीन क्षितिज का निर्माण किया है । सामाजिक जागरूकता को नवीन अभिव्यक्ति से उजागर करते मानवतावादी गीतों के अमूल्य स्वर इस संग्रह की अतिरिक्त विशिष्टताएँ हैं । इस संग्रह की 'मसूरी' और 'देश' रचनाएँ पर्याप्त ख्यातिप्राप्त हैं । 'मसूरी' में कवि की सहज-हृदय की अभिव्यक्ति दृश्य-प्रभाव क्षमता को रेखांकित करती है । प्रकृति के प्रति कवि का आन्तरिक अनुराग निर्व्याज रूप से फूटा है जिसमें गीत की सहजता और प्राकृतिक चित्रों की ग्रहणशक्ति कवि के राग-बोध के साथ साकार रूप में उभरकर आई है । प्रतीक व उपमानों के नवीनतम प्रयोग समाविष्ट हैं । 'देश' रचना की सांस्कृतिक शांतिप्रियता की पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में कवि ने अपनी लेखनी का सफल प्रयोग कर आज तक उपेक्षित अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों को सशक्त वाणी दी है ।

'अविराम चल मधुवन्ती' वीरेन्द्र मिश्र का परिपक्व नवगीत-संकलन है । इसकी भूमिका में इसके कथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है - "विगत दशक जहाँ एक ओर मेरे जीवन की व्यवस्था-अव्यवस्था पर एक के बाद एक धूल और रांगोली की परतें छोड़ता रहा है और हृदय पर चोट करता रहा है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी कविता तथा गीत के धरातल पर भी अनेक शुभ-अशुभ मूल्य बिखरा गया है । इस सन्दर्भ में निरन्तर टूटने की प्रक्रिया के बहुरंगी क्षण इस संकलनान्तर्गत आकलित हैं। सचमुच, ये वही क्षण हैं, जिनके कारण कालदंश की पीड़ा के कारण ध्यान बँटता रहा है । इस प्रतीति की कुछ रचनाएँ इस संग्रह में भी हैं ।"[७]

'अविराम चल मधुवन्ती' में अंतरंग और विशिष्ट आस्थाओं की अभिव्यक्ति ने कवि की संश्लिष्ट भावनाओं को तीव्रता से उजागर किया है । गीतों में कवि की प्राण-चेतना और स्फूर्ति में निर्वैयाक्तिक चेष्टाएँ अनुस्यूत हैं । "नवगीत विधा को अपनाकर कवि ने सृष्टि की विविधता प्रेम और दुलार से सिक्त कर राग के स्वरों में ढाला है ।"[८] इस गीत-संग्रह में जहाँ नदी, झरना, झील, वर्षा, समुद्र, प्रकृति आदि को चित्रांकित करते आंचलिकता प्रधान गीत हैं, वहीं युगीन समस्याओं से जुड़े कई सशक्त गीत भी ध्यान आकर्षित करते हैं । प्रकृति इन गीतों की संवेदना और शिल्प की प्रमुख घटक है ।

'झुलसा है छायानट धूप में' के गीतों तक आते-आते वीरेन्द्र मिश्र यथार्थोन्मुखी चेतना से समग्रतः सम्पृक्त होते दिखाई देते हैं । इस संग्रह की रचनाओं में सामयिक जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं को अधिक तीव्रता से उभारने का प्रयत्न किया गया है कदाचित इसी कारण यहाँ व्यंग्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से उभर कर सामने आई है । कथ्य की इस नूतन भाव-भंगिमा ने मिश्र जी के गीतों की भाषा को भी नये रूप में ढाला है । शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का सर्जनात्मक संदेश इस संग्रह के गीतों की प्रमुख विशिष्टता है । पूंजीवादी व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए कवि अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय निम्न पंक्तियों में देता है -

"रोटी की आयु बड़ी छन्द की अवस्था से
इसीलिए शब्दों का युद्ध है व्यवस्था से
लाभ के अंधेरे में नाच रहे व्यापारी

मृत्यु के महोत्सव में रस की ठेकेदारी
विष से है सराबोर
अमृता सुराही ।"[१]

नवें दशक में वीरेन्द्र मिश्र के अनेक श्रेष्ठ गीत 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे जिनमें जीवन के हर छद्म को अनावृत करने के प्रयास दिखाई देते हैं ।

गीतिकाव्य के मंच पर वीरेन्द्र मिश्र ने छायावादी प्रकृति-प्रेम एवम् भावुकता का समन्वय कर जटिल यथार्थ के झटकों और पीड़ाओं को रहकर स्वस्थ और समर्थ जीवन-दर्शन का साक्षात्कार किया है । शिल्प की दृष्टि से उसका योगदान अद्वितीय है । गीतकार ने मुक्त छन्द के अपने रूप-विधान में शब्द-स्वरों को एक साथ बांधा है । भावपक्ष की तन्मयता उसके कलापक्ष से बाधित नहीं हुई है। मिश्र जी की दृष्टि मूलतः मानवतावादी है । प्रथम गीतों के साथ राष्ट्रीय गीत, प्रगतिशील और प्रयोगशील गीत भी इनकी लेखनी से निःसृत हुए हैं । रोमानी प्रवृत्ति के साथ उनमें प्रगति की भी तीव्र भावना परिष्कृति पा सकी है लेकिन इधर इनका लेखन व्यक्तित्व नयी कविता के चाल-चलन से प्रभावित होकर नवीन अप्रस्तुत विधान और प्रयोगों के आधुनिकीकरण के मोहजाल में उलझकर काव्य-तत्व से दूर छिटककर खण्डित-होता जा रहा है । मिश्र जी ने गीत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व- छन्द वैविध्य के साथ अद्भुत तथा अनोखा सम्मिलन कर अपनी गीत-सृष्टि की अतिरिक्त विशेषता- 'गेयता' को सिद्ध किया । गीतिकाव्य को समृद्ध कर साहित्य को श्रेष्ठ और सार्थक बनाने वाले ऐसे गीतकारों पर हिन्दी साहित्य को गर्व है ।

उमाशंकर तिवारी :

जुलाई १९४० में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में जन्मे उमाशंकर तिवारी नवगीत साहित्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षरों में से एक हैं । एम.ए. (हिन्दी) करने के बाद इन्होंने हिन्दी में पीएच.डी. भी किया। आठ वर्षों तक रानीपुर, आज़मगढ़ स्थित इण्टर कालेज, डिग्री कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक रहे तत्पश्चात डी.सी.एस.के स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊनाथ भंजन, आज़मगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे ।

इनकी रचनाओं का आरम्भ १९५५ से होता है । १९६० से पत्र-पत्रिकाओं में इनके गीतों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । 'जलते शहर में' गीत संकलन १९६८ में प्रकाशित हुआ । डॉ. शम्भुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित नवगीत श्रेष्ठ समवेत संकलनों 'नवगीत दशक-२' तथा 'नवगीत अर्द्धशती' में तिवारी जी के बहुत अच्छे गीतों का समावेश हुआ है जो उन्हें श्रेष्ठ और सफल नवगीतकार होने का आभास दिलाते हैं ।

उमाशंकर तिवारी 'नवगीत' को 'नयी कविता' के आगे की विधा मानते हैं जो आयामों के नये द्वार खोलती हुई आज के युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि बन गई है - "यह पॉपुलर राइटिंग' से परे कलात्मक होते हुए भी लोक-सम्पृक्त कविता है । इसमें अवचेतन में अवस्थित भोगे हुए सत्य अनुभूति के स्तर पर बिम्बों का रूपाकार ग्रहण कर स्वतः स्फूर्त होते हैं । इसके पास 'दस्तावेजी घोषणापात्र' नहीं है और न तो 'नयी कविता' के फैशन वाले मॉडल ही हैं । नवगीत युग-सापेक्ष होने के नाते

अपने आप में भरपूर अर्थबोध रखता है, फिर भी मेरी दृष्टि में 'नवगीत' और 'नयी कविता' दो नाम नहीं हैं । यदि हैं तो कविता की राजनीति के नाते ।''[१०]

कवि की दृष्टि में - बिना गुनगुनाये काव्य-सृजन सम्भव नहीं है । सृजन का क्षण सर्वदा महिमामय होता है । ''मैं लय और छन्द को गीत की अनिवार्यता मानता हूँ । वैसे विषयवस्तु की जटिलता को ध्यान में रखकर अर्थ की लय भी स्वीकारी जा सकती है । उसी प्रकार छन्दानुशासन से अलग नये छन्दों के अविष्कार भी किये जा सकते हैं । गीत के लिये आज की कविता की भाषा से अलग किसी प्रकार की सांगीतिक भाषा या विशेष प्रकार की पदावली का होना जरूरी हो, ऐसा मैं नहीं मानता । कथ्य के लिहाज़ से खुरदुरी भाषा की तल्ख अभिव्यक्ति भी मेरी दृष्टि में अच्छी-से-अच्छी गीति रचना को जन्म दे सकती है ।''[११]

खुरदरी एवं विषयानुकूल भाषा के माध्यम से परिवेश को जीवन्तता से उभारने वाले बिम्बों की सृष्टि करने में उमाशंकर तिवारी बहुत सफल रहे हैं । सातवें दशक में प्रकाशित होनेवाले नवगीत-संकलनों में श्री उमाशंकर तिवारी के गीत संकलन 'जलते शहर में' का महत्वपूर्ण स्थान है । नवगीत ने व्यष्टिपरक सीमाओं को तोड़ते हुए समष्टि के साथ गीत को जोड़ने का जो महान प्रयास किया है, उसमें 'जलते शहर में' की रचनाओं का भी विशिष्ट योगदान है । युगीन त्रासदी को कवि ने बड़ी सहजता एवं सजगता के साथ मुखरित किया है -

''टूटे दरवाजों पर बिखर गयी राख
जलता है सिगरेट की आग से शहर
सभी ओर चीख और शोर
इन्सानी दर्द सभी ओर
दहशत का अन्धा दानव
लील रहा सभी ओर-छोर
कुत्ते-से भाग रहे पागल इन्सान
हर घर है बना हुआ एक मौत घर''[१२]

अपने गीतों के सन्दर्भ में कवि का कहना है - ''गीत में मुझे तो वे सारी चीज़ें सहज रूप में मिल जाती हैं जो मेरी अभिव्यक्ति के लिए जरूरी हैं । छन्द मेरे लिए कभी मजबूरी रहा भी नहीं, क्योंकि इसका प्रयोग मैने हर ज़रूरत के तहत किया है ।''[१३]

माहेश्वर तिवारी :

अगस्त १९३९ में बस्ती, उत्तर प्रदेश में जन्मे माहेश्वर तिवारी गोरखपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी से एम.ए. करने के पश्चात बस्ती में अध्यापन कार्य से जुड़े और नौ वर्षों तक अध्यापन के बाद वे गोरखपुर में रहते हुए पत्रकारिता और फिर स्वतन्त्र लेखन से जुड़े रहे ।

उनकी रचनाओं का प्रकाशन 'पाँच जोड़ बाँसुरी' तथा 'एक सप्तक और' में पहले ही हो चुका है । इनके अतिरिक्त धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवनीत, कादम्बिनी, ज्ञानोदय, लहर, कैक्टस, युयुत्सा,

शब्द आदि प्रमुख पत्रिकाओं में समय-समय पर आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। आपका प्रकाशित स्वतन्त्र गीत-संग्रह 'हरसिंगार कोई तो हो' है।

माहेश्वर तिवारी नवगीत के काव्यत्व और कलात्मकता को उसकी पहली शर्त मानते हैं। उनके अनुसार 'नवगीत' अकविता, स्वीकृत कविता, श्मशानी कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि की तरह केवल नारा कभी नहीं रहा। रचना के सन्दर्भ में वे लिखते हैं - "रचना अपने मूल में रचनाकार का नितान्त निजी अनुभव या अपने आस-पास से सीधे साक्षात्कार का परिणाम होती है। किन्तु अभिव्यक्ति तक पहुंचते-पहुंचते वह अनुभव या वह साक्षात्कार व्यक्तिवादी मनोविलास की अभिव्यक्ति न होकर समूह-मन की चिन्ता, छटपटाहट और कभी-कभी हर्ष, उल्लास भी बन जाती है। आज ऑक्टोपस संस्कृति अपनी विविध रूपाकारों वाली टहनियों से व्यक्ति और समाज को अपने घेरे में लेने को प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता को बचाये रखने के संघर्ष को यदि कुछ सार्थक नाम दिये जा सकते हैं तो उनमें से नवगीत भी एक है।... अपनी रचनात्मक यात्रा में नवगीत ने मिट्टी की सोंधी सुवास के साथ ही साथ एक सर्वथा नयी संगीतात्मकता दी हिन्दी कविता को। नवगीत की यात्रा स्वस्थ समाज के सामाजिक चिन्ताओं के व्यापक धरातल की पड़ताल है। हर जुलूस में शामिल होकर झंडा लेने, जोर-जोर से जय-जयकार करनेवालों ने कुछ समय के लिए अवश्य नवगीत को अपनी अक्षमता और कुहासे से घेर लिया किन्तु अब वे और दूसरे जुलूसों में शामिल हो गए हैं, इसलिए यह खतरा टल गया है। ऐसे लोगों ने नवगीत में भी वैसा ही कार्बन लेखन किया है जैसा कुछ लोगों ने नयी कविता में किया था। ये प्रतिभाहीन घुसपैठिये थे। अच्छा ही हुआ कि उन्होंने अपनी कमजोर प्रतिभा तथा निरन्तर नये-नये जुलूसों में झण्डाबरदारी करने की अपनी नियति समझ-पहचान ली। अराजक तथा शिविरग्राही समीक्षा की बैसाखी बहुत दिन उनके काम आनेवाली नहीं है। कविता अन्ततः केवल छन्द नहीं है, किन्तु वह सिर्फ नारा या आन्दोलन भी नहीं है।... हिन्दुस्तान में कविता को लोगों से जोड़ने और कविता के अपने लम्बे जीवन के लिए छन्द ज़रूरी है। अन्यथा सिर्फ पाठ्यक्रमों या पुस्तकालयों में संग्रहीत होकर वह जीवित नहीं रह पाएगी।"[१४]

इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों का निर्माण करते हुए माहेश्वर तिवारी ने आज के जीवन की टूटन, व्यथा एवम् यातना को लयात्मक अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति उनके अनुभवों के सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है -

"लहरों में आधे से झुके हुए
थकी हुई नावों के पाल
विष भीगे शीशे-सी चुभती है
अमलतास की फूली डाल।"[१५]

श्री माहेश्वर तिवारी के नवगीत यों तो आरम्भिक स्थिति से ही प्रकाशित होने शुरू गये थे किन्तु उनका स्वतन्त्र गीत संकलन 'हर सिंगार कोई तो हो' देर से प्रकाशित हो पाया जिसमें उनके सन् १९६४ से सन १९७४ तक के ७४ गीत संकलित हैं। यह तथ्य नवगीत के इतिहास को नवीन रूप में रेखांकित करता है। भाषा, बिम्बों एवम् संवेदनाओं का इस रूप में नवता-सम्पन्न होना माहेश्वर

तिवारी के गीतों को तत्कालीन गीत-साहित्य से पृथक करता है । भाव-प्रवणता और आधुनिकता का जो संयोग माहेश्वर तिवारी के गीतों में उपलब्ध है, वह बहुत थोड़े गीतकारों में मिलता है । जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ, जिन्हें आज का बुद्धिजीवी उपेक्षित कर चुका है, कितने भावुक सन्दर्भ लिए हैं । नदी, तालाब, फूल, झरने, तिनके, हवा, तारीख, दिन, साँस, रूमाल, उजाला, धूप, कुहासा, कोलाहल, किनारा, दरवाजे, खिड़कियाँ, रेत, गाँव, घर, सीवान, धूल, उँगलियाँ, सड़क, अखबार, धुँआ- सभी हमारे लिए अति परिचित सन्दर्भ, स्थल अथवा संज्ञाएं हैं । परन्तु 'हरसिंगार कोई तो हो' इन साधारण परिस्थितियों का ही महाकाव्य है । इस संग्रह के अधिकांश गीत एक उदासी की तरलता लिए हैं । यह उदासी किसी एकान्तप्रिय विरही की उदासी नहीं वरन् असहाय व्यक्ति की उदासी है जो हर विश्वास को अत्यन्त व्यवस्थित रूप से तोड़े जाते देख रहा है । वह एक त्रासद स्थिति से खुद ही नहीं गुज़र रहा बल्कि एक पूरे युग के उससे गुजरने का साक्षी भी है । आज की भागदौड़ की ज़िन्दगी में कुछ छूटता जा रहा है, कुछ कुचला जा रहा है । वह कुचला गया तन प्रकृति का है - यह अहसास माहेश्वर जी के गीतों में स्वाभाविक रूप से देखा जा सकता है ।

अमरनाथ श्रीवास्तव :

अमरनाथ श्रीवास्तव का जन्म जून-१९३७ में उत्तर प्रदेश की गाजीपुर जनपद में हुआ था । वह नैनी (इलाहाबाद) में जी.ई.सी. नामक व्यावसायिक प्रतिष्ठान के लेखा-विभाग से सम्बद्ध रहे हैं । आपकी रचनात्मक यात्रा १९६० से आरम्भ हुई थी और आज भी जारी है । आपकी कविताएँ हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं । आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी आपकी रचनाओं का प्रसारण समय-समय पर होता रहा है । एक काव्य-संकलन भी प्रकाशनाधीन है ।

अमरनाथ श्रीवास्तव कहते हैं - "एक सही कविता व्यक्ति के अन्तर्लोक और उसके वाह्य परिवेश का साक्षी है । कविता इन्हीं सन्दर्भों में रचनाकार को समानधर्मा देती है । वह रचना चाहे आर्थिक-राजनीतिक दबाव के कारण बने, रचनाकार के बाह्य संसार की हो, या मात्र आदमी होने के नाते उसके अपने निजी संसार की, लेकिन उसका कविता होना पहली शर्त है । इन दोनों सन्दर्भों में किसी अकवि को कवि होने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए, चाहे वह नयी कविता का कवि हो या गीतकार ।... नवगीत और नयी कविता में शिल्प की भिन्नता होने के बावजूद कथ्य और उससे उत्पन्न लय में समानता है । नवगीत में ललित गीतों की अपेक्षा भाषा और छन्द का ऊबड़-खाबड़ होना स्वाभाविक है और शिल्पगत खुरदरापन रचना को नयी चमक देता है । नवगीत का उत्स मैं कबीर की 'उलटबाँसी' को मानता हूँ, जो धर्म की आन्तरिक आवश्यकता और धर्म के नाम पर, बाह्याडम्बर के नाम पर जन्मती है ।"[१६]

सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों तथा प्रदूषित राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अमरनाथ श्रीवास्तव अत्यधिक क्षुब्ध दिखाई पड़ते हैं, इनकी ये रचनाएं इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं -

"प्रत्यंचित भौहों के आगे
समझौते केवल समझौते ।
भीतर चुभन सुई की,

बाहर सन्धि-पत्र पढ़ती मुस्कानें ।
जिस पर मेरे हस्ताक्षर हैं,
कैसे हैं, ईश्वर ही जाने ।
आंधी से आतंकित चेहरे
गर्दखोर रंगीन मुखौटे ।"[१७]

०० ०० ०० ००

"पेड़ों की दुनियां है
जंगल की सत्ता
हर आहट भाँप रहा है -
पत्ता-पत्ता
सूरज जब देता है
धूप के निवाले
हाथ बढ़ा देते
ऊँची फुनगी वाले
बौने पौधों पर है -
छांह का चकत्ता"[१८]

कवि अपनी संवेदना को अत्यधिक गहराई के साथ प्रकट करने का प्रयत्न करता है जिसके कारण उसकी व्यक्तिगत अनुभूति और संवेदना सामान्य जन की समष्टिगत संवेदना और अनुभूति का रूप ले लेती है । निम्न नवगीत पंक्तियों में उनकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देखने लायक है -

"मेरी सीमा में हैं जिनको
मैं न कहूँ तो कौन कहेगा ।
लहरों के अनुकूल रहा जो -
वह प्रतिमान बना देता है
यह प्रवाह निर्जीव देह को -
भी गतिमान बना देता है
उलटी धारा दिशा हमारी
मैं न बहूँ तो कौन बहेगा ।"[१९]

उमाकान्त मालवीय :

जिस युग का रचनाकार समझौतों पर उतर आता है, सुविधाओं को खरीदने के लिए कलम गिरवी रख देता है और मिथ्या अहम् के विज्ञापन के लिए ओछे हथकण्डे अपनाता है, उस युग में अपनी गर्दन सीधी रखने वाला, स्वयं को विक्रय की वस्तु न बने देने वाला और सह रचनात्मक विश्वास के बल पर स्थापित होने वाला रचनाकार अपनी विशिष्टताओं के लिए प्रणम्य है । उमाकांत मालवीय

ऐसे ही स्वाभिमान-सम्पन्न गीतकार थे। स्वर्गीय श्री उमाकांत जी उन चन्द रचनाकारों में से थे, जिन्होने वर्तमान जीवन के अनैतिक दबावों तथा विपरीत परिवेश के मध्य संघर्षरत रहते हुए अपनी सृजनात्मक आस्था को बचाये एवम् बनाये रखा।

यों तो उमाकान्त जी ने खण्डकाव्य, ललित निबन्ध एवं बालगीत भी लिखे हैं, किन्तु विशेष ख्याति उन्हें नवगीतकार के रूप में ही मिली है। आपकी रचनायात्रा तीन दशकों तक चली है जिसने आपको स्थापित नवगीतकारों की अग्रिम कतार में लाकर खड़ा कर दिया है। राजेन्द्र गौतम स्पष्ट रूप से कहते हैं - 'जीवन के प्रति एक निहायत ईमानदार व्यक्ति ही लम्बे समय तक नवगीत से जुड़ा रह सकता है, क्योंकि नवगीत स्वयं में मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिकता का काव्य है। मूल्यहीनता, नैतिकता, सामाजिक विद्रूपता एवं मूखौटाधारी व्यवस्था के सीवनों को नवगीत ने प्रारम्भ से ही उधेड़ा है।''[२०]

मालवीय जी की नवगीतकार के रूप में पहचान उनके अपने आरम्भिक स्वतंत्र नवगीत-संकलनों 'मेंहदी और महावरे' तथा 'सुबह रक्त पलाश की' से ही हो जाती है जहाँ से उनकी नवगीत-यात्रा प्रारम्भ होती है। 'एक चावल नेह रींधा' नवगीत संकलन उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार 'कविता-६४', 'पांच जोड़ बांसुरी', 'नवगीत दशक-१' तथा 'नवगीत अर्द्धशती' जैसे महत्वपूर्ण इतिहास-सर्जक समवेत संकलनों में मालवीय जी की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

उमाकान्त मालवीय के अधिकांश गीत संवेदना के धरातल पर विभिन्न भावभूमियों पर स्थापित होकर भी एक समानता रखते हैं। वह समानता है, अपने अपने सन्दर्भों में सामयिक रचनाधारा के बीच अपनी अलग शिल्पगत पहचान बनाने की। मालवीय जी का व्यक्तित्व सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न है और संस्कृति परम्परा के माध्यम से जीवित रहती है। उनके नवगीत का उत्कर्ष काल सन् १९६५ से १९७५ ई. तक का है। उन्होंने यद्यपि स्वयं को प्रत्येक प्रकार की सैद्धान्तिकता से अप्रतिबद्ध माना है, परन्तु प्रत्येक सजग रचनाकार की भाँति वे मानव मूल्यों से प्राथमिक एवम् अंतिम रूप में प्रतिबद्ध थे, इसीलिए सामान्यजन की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को उन्होने अपना सर्वोपरि दायित्व समझा। इस दायित्व का निर्वाह उन्होंने आंदोलनकारी कवियों की भाँति नारेबाजी के द्वारा नहीं किया है, वरन् सामयिक भारतीय समाज जिस अनैतिकता के कुहासे में घिर गया था, शोषण की हिमशिला पर तड़प रहा था, छद्म की घटाटोप अंधियारी में भटक गया था और दमन के खूनी पंजों में जकड़ता जा रहा था, उसका अनुभूति-सापेक्ष चित्रण नवगीतकार ने अपनी रचनाओं में किया है। कवि देखता है कि, सर्जनात्मक विश्वास का वास्तविक देय उपस्थित किया जा रहा है, प्रश्न से आहत अनिश्चितता हर ओर मंडरा रही है। कुछ कुहरों पर अंकित दस्तावेज विरासत में मिले हैं, व्यवस्थाओं ने हथकड़ी और बेड़ी ही दी है, अंखुओं को पाला मार गया है। ऐसी स्थिति में जीवन के स्वाभाविक परिवेश का विकृत हो जाना अवश्यम्भावी है -

''कंधों पर सैकड़ों
सलीब लिए प्रश्न के
सूर्योदय होते हैं हारे-हारे थके
सोख गईं स्वाति मेघ कुछ कृतघ्न सीपियाँ

बांझिन हो गईं किस नियोजन से क्रान्तियाँ
कुहरों की शिकने हैं, मस्तक पर घाम के
उत्तर की तलबगार द्वार पर दस्तकें ।"[२१]

'मेंहदी और महावर' वैयक्तिक उल्लास-क्षणों की शृंगार-केन्द्रित अभिव्यक्ति होते हुए भी पूर्ववर्ती गीत तथा तत्कालीन हिन्दी-कविता की एक ढर्रे की अभिव्यक्ति से स्पष्ट भिन्नता रखता है । इस संकलन की शिल्पगत मौलिकता है - इसकी सहज किन्तु अनुकूल, सशक्त एवं सौन्दर्य मंडित भाषा, इन्द्रिय संवेद्य, संवेगमूलक प्रकृतिपरक बिम्ब-विधान, भावानुसारिणी लयों की सृष्टि करने वाला पूर्णताग्राही छंद-विधान तथआ तथा चमत्कार प्रदर्शन से रहित अप्रस्तुत-विधान । इन्हीं विशिष्टताओं के आधार पर इस संकलन को नवगीत के अन्तर्गत स्थान प्राप्त हो जाता है ।

ओम प्रभाकर :

अगस्त १९४१ में मध्यप्रेदश के भिण्ड जनपद में जन्मे डॉ. ओमनारायण अवस्थी (ओम प्रभाकर) ने एम.ए. करने के बाद हिन्दी में ही पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की । आरम्भ में मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग में अध्यापन-कार्य से संलग्न रहे; तत्पश्चात शासकीय महाविद्यालय, भिण्ड में हिन्दी-व्याख्याता के रूप में कार्यरत रहे ।

ओमप्रभाकर का रचनाकाल १९६० से आरम्भ होता है । इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ - 'अज्ञेय का कथा-साहित्य (समीक्षा)', 'पुष्पचरित (गीत संकलन)', 'एक परत उखड़ी माटी (कहानी संग्रह)', 'कंकाल राग (मुक्त छन्द की कविताओं का संग्रह)', 'कथाकृति मोहन राकेश' (शोध समीक्षा) हैं । अपने नवगीत के प्रथम समवेत संकलन - 'कविता ६४' तथा प्रथम अनियतकालीन काव्य-पत्रिका 'शब्द' का सम्पादन भी किया । आपकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं ।

ओम प्रभाकर मानते हैं कि 'नवगीत' नयी कविता की प्रतिक्रिया नहीं है अतः स्पष्टतः वह नयी कविता का विरोधी भी नहीं । साहित्य विधाएं परस्पर विरोधी होती ही नहीं । विरोध प्रवृत्तियों में होता है, न कि विधाओं में । कवि कहता है - 'एक बदली हुई काव्योचित लय, सहजता, जायीत संस्कृति, भावोद्भूत और ताज़गीपूर्ण बिम्ब-प्रतीक, टटकी भाषा, अभी तक अदृश्य और अस्पृश्य, नितान्त सद्यः प्रस्तुत दृश्य वास्तविक जीवन की गहन अनुभूतियाँ, युग संपृक्ति और आज की विषमता व जटिलता से चटकते हुए व्यक्ति के लिए सांत्वनाप्रद, सहलाता हुआ आत्मिक स्पर्श है ।"[२२]

कवि की मान्यता है कि - नवगीत एक ऐसे विशिष्ट स्तर पर अवस्थित है जहाँ का शाश्वत और परिवर्तनशील रूप दोनों ही उनके अनुभव व्यास और अभिव्यक्ति-प्रक्रिया में एक साथ सहज ही आ जाते हैं । कवि के विचार से नवगीत आज के सम्पूर्ण जीवन के लघु-लक्ष्यों की कविता है । वह संगीत, लय, छन्द, तुक और ताल की समस्त पारम्परिक रूढ़ियों से मुक्त होता हुआ भी उनकी मूल धारा से जुड़ा है । वह एक ऐसा काव्य-रूप है जो वास्तविक रचना के आंतरिक अनुशासन से अनुशासित है ।

ओमप्रभाकर के गीतों में गाँव की खुश्बू, खेतों की हरियाली, विभिन्न प्राकृतिक कथ्यों, पंछियों, ग्रामीण लोक-संस्कृति, किसान, मजदूर और आम आदमी की दैनन्दिनी को बड़ी ही सहजता से आश्रय मिला है । अतीत की यादों में खोये हुए कवि को गाँव की स्मृति अनायास ही होने लगती है-

''डूब गया दिन
जब तक पहुंचे तेरे द्वारे !
एक धुंधलका छाया ओर-पास
धूप गाँव बाहर की छूट गयी
छप्पर बैठक सब बिल्कुल उदास
पगडण्डी दरवाजे टूट गई
भारी था मन
हम थे काफी टूटे-हारे !''[२३]

इसी तरह ये पंक्तियाँ भी देखें -

''यह पथ अब छोड़ दें !
खेत वही बंजर-सुनसान
रेत हुए ताल
भूखे प्यासे मकान
गिरते-गिरते अकाल
इनसे होकर जाता
यह रथ अब तोड़ दें !''[२४]

सुधांशु उपाध्याय :

दिसम्बर १९५१ ई. में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में जन्मे श्री सुधांशु उपाध्याय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद कुछ दिनों तक अध्यापन कार्य से जुड़े रहे, तदनन्तर पत्रकारिता के व्यवसाय से संलग्न हो गए । आपकी रचनाओं का आरम्भ लगभग १९७० ई. से हुआ और अब भी चलायमान है । आपकी कविताएँ, कहानियाँ और निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । आकाशवाणी से भी आपकी कई रचनाओं का प्रसारण हो चुका है । 'नवगीत' और 'नयी कविता' के स्वतंत्र संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं ।

सुधांशु उपाध्याय मानते हैं कि, ''आम आदमी के बदलते परिवेश, संकट, घुटन और पीड़ा के साथ होना कवि की सहज नियति है । अगर विवाद है तो कवि पर, कविता या गीत पर नहीं । नयी कविता का हल्ला जब कम हुआ तो नवगीत की नाजुक कलाई पकड़ने के लिए हड़कम्प मचा और नयी कविता के कई जीते-हारे योद्धा इधर भी लपके । ये न नयी कविता के प्रति ईमानदार थे, न गीत के प्रति । लेकिन ढेरों ईमानदार लोग इन दोनों विधाओं में थे ।''

कवि की रचनाओं में समकालीन परिवेश, पारम्परिक मूल्यों के परिवर्तन, मानवीय संवेदनाओं का एहसास, अतीत की सुखद यादों और भविष्य की चिन्ता यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है । पारिवारिक संत्रस्त मनोव्यथा को कवि ने इन पंक्तियों में बड़ी सहजता से चित्रित किया है -

"दिन उनके अनुकूल हो गए ।
हरसिंगार के सारे पौधे
रातोरात बबूल हो गये ।
पेड़ों का उल्लास फट गया
घर-घर में भर गयी उदासी,
बूढ़ा पीपल रात कट गया,
ऐसी काली आंधी आयी
काले सारे फूल हो गए ।
'अबकी आना, नथुनी लाना'
कलकत्ते में आकर मंगरू-
जोड़ रहे हैं दो-दो आना,
सतरंगे आंखों के सपने
बाहर आकर धूल हो गए ।"[२५]

महानगरीय संत्रास और आम आदमी की दयनीय मनोदशा को कवि ने बखूबी अपने गीतों में रेखांकित किया है -

"आंखों में हैं सैर-सपाटे,
हाथों में बबूल के कांटे ।
महानगर को जानेवाले
लौटे नहीं अभी,
राजमार्ग पर रक्तचिन्ह हैं
ताज़ा पड़े हुए,
कैसे लोग बदल जाते हैं
महज टोपियों से
नाटक नहीं देखते-सुनते
हम भी बड़े हुए
रह-रह करक रहे हैं भीतर
अपने ही उसूल के कांटे ।"[२६]

गुलाब सिंह :

बिगहनी, इलाहाबाद से जनवरी १९४० ई. में जन्मे श्री गुलाब सिंह नवगीत के एक स्थापित हस्ताक्षर हैं । उन्होने इतिहास एवम् अर्थशास्त्र विषयों में स्नातकोत्तर की उपाधियाँ प्राप्त कीं, तदुनन्तर

उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग में इण्टर कॉलेज में इतिहास के प्रवक्ता के रूप में कार्यभार संभाला। उनकी रचनाओं का आरम्भ लगभग १९६० से होता है। सन् १९६२ से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं का प्रकाशन होने लगा। १९७५ में 'पानी के घेरे' नामक उपन्यास प्रकाश में आया। तत्पश्चात दो काव्य-संग्रहों का प्रकाशन भी सामने आया।

गुलाबसिंह के गीतों में समकालीन सामयिक परिस्थितियों, खंडित हो रहे स्वप्नों एवम् समग्र क्रान्ति की ललक का यथार्थ निरूपण दिखाई पड़ता है जो विभिन्न त्रासद स्थितियों को और भी प्रभावपूर्ण ढंग से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। युग की नकाबधारी स्थिति को चित्रित करते हुए कवि लिखता है -

"शीशों के दिल दिमागवाली
महलों की महरिन-सी
झुग्गियाँ
बूटों बंदूकों के पाँव ढके
अनुशासन पर्वों की लुंगियां
सपनों का एक स्वर्ग
सुलग रहा आंखों में
नाकों में निन्यानवे नरक।"[२७]

गुलाबसिंह के नवगीतों में गाँव के जीवन, उसकी पुरानी पवित्रता, निश्छलता एवम् सादगी को बड़ी ही सहजता से रेखांकित किया गया है। ग्रामीण जीवन में घुल रहे विष और उससे उत्पन्न पीड़ा एवं कराह की आहट साफ सुनाई पड़ती है -

"गांवों के फैले हाथों में
ज्वार-बाजरा बांट कर,
धूप चढ़ रही फिर अंटों पर
    सबसे कन्नी काटकर।
बप्पा सिर पर हाथ धरे हैं
    मां बैठीं मन मारे।
टूटी छत के तले
भाइयों के
    अंतिम बंटवारे।
घर के दिन सो गये
    शाम की
सिली पिछौरी साट कर।"[२८]

गुलाब सिंह का मानना है जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता की जागरूकता एक अनिवार्य जरूरत है। सहजता और संवेदनीयता के कारण नवगीत इस जरूरत को उचित समाधान दे सकता है। गुलाब

सिंह लिखते हैं - "इस घिराव और घुटन के बीच नवगीतकार का रचनाकर्म राजनीतिक सन्दर्भों से भी जुड़ गया है । इस प्रसंग में जो गीत, नारेबाजी के तहत या फतवे और उपदेश के रूप में लिखे गए हैं वे 'नवगीत' की तसवीर खंडित करते हैं लेकिन जो परिस्थिति से जूझने की छटपटाहट से निकले हैं, वे उसकी सार्थकता को प्रमाणित करते हैं । आज प्रकृति, संस्कृति, समाज, राजनीति, सभी कुछ नवगीत की रचनात्मकता से पूर्णतः संबद्ध है ।"[२९]

बुद्धिनाथ मिश्र :

मई १९४९ में बिहार के दरभंगा जिले में जन्मे बुद्धिनाथ मिश्र ने बाल्यावस्था से ही वाराणसी में रहकर संस्कृति की पारम्परिक परिपाटी के अनुसार विद्याध्ययन की । नव्य पाणिनीय व्याकरण विषय से मध्यमा करने के बाद वे नवीन शिक्षा-पद्धति की ओर उन्मुख हुए । इन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया । 'यथार्थवाद और हिन्दी नवगीत' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि भी उन्होंने प्राप्त की ।

मिश्र जी की रचनाओं का प्रारम्भ सन १९६५ से होता है । दैनिक पत्र 'आज', वाराणसी के सम्पादकीय विभाग में सहायक सम्पादक के रूप में नौ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात १९८१ ई. से यूनाइटेड कामर्शियल बैंक के प्रधान कार्यालय (कलकत्ता) में राजभाषा अधिकारी पद पर वे सेवारत रहे । कविता के अतिरिक्त वे कहानी, निबन्ध, रिपोर्ताज तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के लेखनक्षेत्र से भी संलग्न रहे हैं । 'जाल फेंक रे मछेरे' उनका प्रकाशित स्वतन्त्र गीत संग्रह है । उनके छिटपुट गीतों के प्रकाशन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर होते रहे हैं । लम्बे समय से उनके गीतों का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से होता रहा है । उनके संगीत रूपकों एवम् वार्ताओं का भी प्रसारण आकाशवाणी से होता रहा है ।

अपनी 'दृष्टि-बोध' में बुद्धिनाथ मिश्र लिखते हैं - "नवगीत ने पिछले तीन दशकों में उपेक्षा की कंटीली झाड़ियों और आलोचना की आँधियों के बीच जो संघर्षपूर्ण यात्रा की है, उसकी अजेय आंतरिक ऊर्जा और दृढ़ आत्मविश्वास उसी का परिणाम है । नवगीत और नयी कविता का उद्‌भव लगभग एक साथ हुआ । नयी कविता अमर बेल की तरह नवगीत के हरसिंगार पर लतरती रही और उसके रस का शोषण कर अपना रंग दिखाती रही ।... लोग यह महसूस करने लगे हैं कि आम आदमी का नाम जपने वाली नयी कविता की आम आदमी के बीच कोई पहचान नहीं है और यह नवगीत ही है जो आधुनिक बोध-परक यथार्थवादी प्रवृत्तियों को छन्दों के सांचे में ढालने के कारण आज की मुख्य काव्य-धारा बन सकता है ।... गीत-धर्मिता केवल भारतीय लोक-जीवन की ही नहीं, मानव-मात्र की एक सहजात प्रवृत्ति है । मातृरूपा प्रकृति अपनी संतानों में जिन पोषण रसों का संचार करती है, उनमें एक गीतधर्मिता भी है । सुख या दुख की स्थिति प्रगाढ़ होने पर गा उठने की हमारी आदिम वृत्ति इस वैज्ञानिक युग में कवच की तरह उपादेय है । वह हमें आंतरिक स्तर पर यंत्र होने से रोकती है ।... गीत की मूल विशेषता है - भावात्मक अनुभूतियों की अन्विति और उनका भाषा में सहज स्फोट तथा शब्दों की सांगीतिक एवम् व्यंजनात्मक शक्ति की पहचान कराने वाला प्रयोग । नवगीत इन मूलभूत तत्वों को दाय रूप में पूरी निष्ठा से ग्रहण करता है ।"[३०]

बुद्धिनाथ मिश्र महानगर में रहते हुए भी अपने अतीत की यादों से कभी विमुख नहीं हो पाये। महानगर की त्रासदी कवि-मन को उद्देलित और संत्रस्त करती रहती है, कदाचिद् इसी कारण कवि का मन बचपन में अपने गाँव में बीते क्षणों की याद करने लगता है -

"चैता आंके रेख
महावर की
खलिहानों को सुधि
आयी घर की
आंचर लगे नयन उलझाने
नीम तले ।"[३१]

इस प्रकार ग्राम और नगर के ताने-बाने से बुने गीत कवि के व्यक्तित्व की पहचान में सहायक हैं। कवि, ग्राम्य व नगरीय दोनों परिस्थितियों में उलझे होने के बावजूद अपनी आस्था और सांस्कृतिक चेतना से विलग नहीं हो पाता, क्योंकि कवि का मानना है कि, 'उनका सम्बल छोड़ देने पर दम घुटने लगता है ।' कवि कहता है -

"सड़कों पर शीशे की किरचें हैं
औ' नंगे पाँव हमें चलना है ।
सरकस के बाघ की तरह हमको
लपटों के बीच से निकलना है ।
सूर्य लगे अब डूबा, तब डूबा
औ' ज़मीन लगती है धँसती-सी
भोर; हिंस्र पशुओं की आँखों-सी
साँझ; बेगुनाह जली बस्ती-सी
मेघों से टकराते महलों की
छांहों में और अभी जलना है ।"[३२]

जहीर कुरेशी :

मध्यप्रदेश के गुना जनपद में चन्देरी नामक स्थान पर अगस्त १९५० में जन्में जहीर कुरेशी विज्ञान विषय से स्नातक प्राप्त करने के पश्चात पूर्णरूपेण रचना-कार्य से जुड़ गये । उपमंडल अधिकारी 'दूरभाष' ग्वालियर-कार्यालय में 'दूर संचार कार्यालय सहायक' के पद पर कार्यरत रहते हुए उन्होंने महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कार्य जारी रखा । मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर की साहित्य वार्षिकी 'इंगित' के वर्ष १९७८ ई. अंक का सम्पादन भी उन्होंने किया । 'लेखनी के स्वप्न' तथा 'एक टुकड़ा धूप' उनके प्रकाशित स्वतन्त्र नवगीत संग्रह हैं । 'एक टुकड़ा धूप (नवगीत-ग़ज़ल संग्रह) को वर्ष १९८१ के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा पुरस्कृत भी किया जा चुका है । उनकी अनेक कविताओं के प्रकाशन नवनीत, धर्मयुग, कादम्बिनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, रविवार, सारिका, अवकाश, श्री वर्षा, आजकल, हिमप्रस्थ, वीणा, मधुमती, उत्तरार्द्ध, मनन आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर होते

रहे हैं । शम्भुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित 'नवगीत दशक-३' में भी उनके गीतों को समाविष्ट किया जा चुका है । जहीर कुरेशी, 'नवगीत' को भारतीय मिट्टी में रचा-बसा वह दायित्वाभिमुख गीत-काव्य मानते हैं जिसमें व्यवस्था से जूझने की शक्ति एवं ऊर्जा है, जो युद्ध और साम्प्रदायिकता का विरोध भी करता है तथा सामाजिक, राजनैतिक उत्पीड़न का पर्दाफाश भी करता है । "नवगीत किसी भी स्तर पर सामाजिक पलायन का समर्थक नहीं है । जहाँ एक ओर नवगीत अतीत जीवी, मृतप्राय, रूढ़ मान्यताओं को तन कर नकारता है, वहाँ दूसरी ओर, समृद्ध संस्कारों और परम्पराओं की शाश्वत धारा को झुककर सलाम भी करता है । नवगीत विज्ञानोन्मुख है और आधुनिक यथार्थ का प्रत्येक महत्वपूर्ण पक्ष उसमें मुखरित हुआ है ।... आज नवगीत सर्वथा शक्ति-समप्न्न है । उसका व्यापक स्वागत इसका प्रमाण है ।"[३३]

जहीर कुरेशी ने समकालीन समाज और व्यक्ति की सन्त्रस्त मनोदशा, मानसिक कुण्ठा और संवेदना को अपने नवगीतों में लयात्मक अभिव्यक्ति दी । एक छोटे-से प्रकृति सम्पन्न कस्बे में जन्मा कवि-मन नदियों की कल-कल और झरनों के छल-छल से गुजरता हुआ अन्तर्मुखी हुआ और लयात्मक अनुशासन में बँध कर शहरी जीवन व्यतीत करने लगा । शहरी संत्रास, घुटन, यांत्रिक विभीषिकाओं, सामाजिक उत्पीड़न तथा पूँजीवाद के दो पाटों के बीच पिसते समाज की दुर्दशा ने कवि-मन को अत्यधिक उद्वेलित किया तथा उसे कविता का अश्त्र उठा लेने के लिए विवश किया -

"लगे 'हादसे' ऐसे
जैसे कोई बात नहीं !
रिश्ते बदले
रिश्तों की परिभाषाएँ बदलीं
महानगर तक आते-आते
भाषाएं बदली
    ऋतुओं में होती
    गर्मी-सर्दी-बरसात नहीं ।
दूर-दूर तक फैल गये
सन्नाटे शोर भरे,
दुश्मन से ज्यादा
अपनी छाया से लोग डरे,
    महानगर में
    आगे से होते 'आघात' नहीं !
कोई अपना नहीं
परायों का जंगल देखा,
आँखों में
आशंकित आनेवाला कल देखा,
    महानगर में सभी मिले,
    लेकिन 'सुकरात' नहीं ।"[३४]

जहीर कुरेशी के गीतों में समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों विद्रूपताओं, यांत्रिक संत्रास, घुटन आदि की यथार्थपरक लयात्मक अभिव्यक्ति हुई है ।

अखिलेश कुमार सिंह :

जनवरी १९५६ में वाराणसी जनपद में जन्मे श्री अखिलेश कुमार सिंह मूलतः एक वैज्ञानिक रहे हैं । गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षाएँ ग्रहण करने के पश्चात लम्बे समय तक 'विज्ञान प्रगति' के उपसम्पादक रहे अखिलेश कुमार सिंह सन् १९७३ ई. से हिन्दी काव्य रचना में संलग्न हैं । देश के विभिन्न वरिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में इनके वैज्ञानिक लेख तथा शोध-निबन्ध समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं ।

'नवगीतकार' के रूप में अखिलेश कुमार सिंह की स्पष्ट पहचान 'नवगती दशक-३' से स्थापित होती है । एक वैज्ञानिक होते हुए 'हिन्दी-काव्य' से अपने जुड़ाव के सन्दर्भ में वे कहते हैं - " संवेदनशीलता कवि का अपना निजी गुण है । उसके बिना काव्य-सृजन संभव नहीं । वैज्ञानिक की प्रखर दृष्टि के घेरे में जब कोई चीज़ आती है तो उसके मस्तिष्क में आरम्भ होने वाली पहली क्रिया तर्क और विश्लेषण की होती है, जब कि कवि-मन पर किसी भी स्थिति या घटना का प्रभाव अनुभूति के स्तर पर होता है । वह अपनी चेतना में कहीं गहरे कुछ महसूस करता है, फिर उसे अभिव्यक्ति देता है या, यों कहें कि, अभिव्यक्ति दिये बिना रह नहीं पाता ।... मेरी ये लयात्मक अभिव्यक्तियाँ नवगीत हैं, यह बात मुझे अपने अंग्रज नवगीतकारों से ज्ञात हुई । मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपने को इस नवगीत की विधा में ही अधिक सहजता से अभिव्यक्त कर सकता हूँ ।"[३५]

आत्मकथ्य में अखिलेश कुमार ने यह स्वीकार किया है कि नवगीत की आचार-संहिता से उनका कोई पूर्वाग्रही वास्ता नहीं रहा है और न ही नवगीत की निर्धारित संरचना से कोई सरोकार । उन्होने सहज भाव से जो भी गीत लिखे हैं, वे नवगीत की परिधि में आ गए हैं, यह एक संयोग ही है।

अखिलेश के गीत सहज और अनुभूति परक हैं जो रोजमर्रा की ज़िन्दगी के परिदृष्यों से घिरे हुए और ज़मीन से जुड़े हुए सतरंगी परिकल्पनाओं से सजे तथा सार्थक प्रतीकों से समन्वित हैं, और अपना एक निश्चित प्रभामण्डल विकसित करते हैं, यथा -

'हम नदी की धार में
बहते सिवारों-से हुए ।
दूर तक फैला हुआ
यह पाट अब अपना नहीं,
सीढ़ियों वाला
पुराना घांट अब अपना नहीं,
धुंध में भटके हुए
डगमग शिकारों-से हुए ।'[३६]

इसी प्रकार यह नवगीत-पंक्तियाँ देखें -

'बीत गये दिन
    फूलों के
खट्टी-मीठी
    भूलों के ।
बातें राजा की
    रानी की
सात समुन्दर के
    पानी की
और नीम पर झूल रेह वे
दिन सावन के
    झूलों के ।''[३७]

या फिर -

''उपले पाथेगी,
बासन मांजेगी,
    पारबती अपने दिन
    यों ही काटेगी ।
तुलसी के
बिरवे को
    पानी देगी,
धौरी को
श्यामा को
    सानी देगी,
आटा गूंथेगी
चूल्हा फूंकेगी
    रात गये मुर्दे-सी
    पड़ सो जाएगी ।''[३८]

अनूपसिंह 'अशेष' :

मध्यप्रदेश के सतना जनपद में अप्रैल १९४५ में जन्म लिए अनूप अशेष आद्योपान्त जमीन से जुड़े रहे हैं । कांग्रेसी शासन में कई बार जेल जा चुके समाजवादी दल के कर्मठ कार्यकर्ता श्री अनूप अशेष हिन्दी से स्नातकोत्तर करने के बाद पूर्णतः लेखन-कार्य में रत रहे हैं । इनकी हिन्दी-काव्य-सृजन-यात्रा १९६० से आरम्भ होती है और वर्तमान में भी वे काव्य-सृजन से संलग्न हैं ।

पहल, ऋचा, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, रविवार, साक्षात्कार, नया प्रतीक, अन्तराल, दिनमान

और कादम्बिनी में उनकी विभिन्न कविताओं का प्रकाशन होता रहा है । नवगीतकार के रूप में उनकी पहचान सन् १९८० में प्रकाशित नवगीत संकलन 'लौट आएँगे सगुन पंछी' से होती है । उसके बाद 'नवगीत-दशक-२' में प्रकाशित नवगीतों से प्रतिनिधि नवगीतकार के रूप में उनकी विशिष्ट पहचान होती है । उनके कुछ अप्रकाशित ग्रंथ भी सामने आये हैं ।

अनूप अशेष 'नवगीत' को नयी कविता की किसी पूरक विधा के रूप में नहीं, बल्कि आम आदमी की ज़िन्दगी से सभी मूल्यों व पक्षों के साथ अपनी अलग शक्ल में खड़ा हुआ मानते हैं। वे कहते हैं - "यह गुस्सा और प्रतिशोध वाली वादग्रस्त कविता की तरह शोर पैदा कर खो नहीं गया । वह, कण्ठ, राग के साथ बराबर आदमी से सम्पृक्त रहा है । पारम्परिक गीत और अगेय कविता, दोनों के बीच संवेदनशील कलात्मकता लिये यह पुल की तरह है । नवगीत चौंकाकर अपनी बचत के लिए खेमें नहीं तलाशता रहा । अतीत, वर्तमान और भविष्य के तात्कालिक-सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच वह अपने तेवर और चमक के साथ उपस्थित रहता है ।"[३९] अनूप अशेष की मान्यता है कि, "आज का नवगीत कविता की अन्य विधाओं से अधिक जहाँ ठहरने या स्वयं को दुहराने की स्थिति में पहुँचने लगती है, तो उसे लोक-पक्ष की ओर, लोकगीतों की ओर देखना ही पड़ता है । आज की वादग्रस्त प्रतिबद्धता के छद्म आयातित मुहावरों वाली कविताओं के बीच नवगीत उसी लोक-गंध के साथ उपस्थित है ।... यह आज की कविता में सर्वाधिक ग्राह्य सशक्त विधा है । युगीन परिवर्तित परिवेश ने गीतकारों की भाषा और शिल्प को प्रभावित किया और नयी भावभूमि दी ।... छठे दशक के बाद से नवगीत अपनी छान्दसिकता, बिंबात्मकता और शिल्पगत नवीनता में अधिक खुलकर सामने आया है ।"[४०]

जमीन से जुड़े होने के कारण उनके नवगीतों में गाँव की ज़िन्दगी और अतीत के स्मृतियों की अनुगूँज सहज ही सुनाई पड़ती है । माटी की सौंधी-सौंधी खूशबू कभी-कभी मन को मोहित कर अतीत की स्मृतियों में छोड़ जाती है -

"फागुनी-निबन्ध मेरा गाँव ।
मन का अनुबन्ध मेरा गाँव ।
महुए की कूच
गुलमोहर के फूल
आँख भरी पगडंडी
गमछे में धूल
झउए की गंध मेरा गाँव ।
मन का अनुबन्ध मेरा गाँव ।"[४१]

या फिर -

"फूली पीली सरसों
ऐसा लगता
बिना तुम्हारे
हुए खेत में बरसों ।

भांटा-फूल
रंग में बोरे
लहके अलसी क्यारी
ऊँचा डीह
पिपरहा घूरे
मसुरी दीठ उतारी
मन में पाला
लगे अरहरी
सूरज छिपे मदरसों ।''[४२]

कुमार रवीन्द्र :

लखनऊ में जून १९४० में जन्मे कुमार रवीन्द्र उर्फ रवीन्द्र कुमार रायज़ादा की प्रारम्भिक शिक्षा लखनऊ और हाथरस में हुई । फिर उच्च शिक्षाएँ लखनऊ में ही प्राप्त कर डी.ए.वी. कॉलेज, हिसार में अंग्रेजी विषय के व्याख्याता के रूप में कार्यरत रहे ।

१९६० से इनकी रचनाओं का आरम्भ होता है । इन्होंने हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में महत्वपूर्ण रचनाएँ की हैं । देश के लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं - कल्पना, नया प्रतीक, सारिका, कादम्बिनी, धर्मयुग, गगनांचल आदि में इनकी रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है । इनकी अंग्रेजी की कविताएँ भी - 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, यूथ टाइम्स, स्काईलार्क आदि के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका 'पोयट' में प्रमुख रूप से प्रकाशित हो चुकी हैं और आज भी प्रकाशित होती रही हैं ।

कुमार रवीन्द्र को साहित्य-क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हासिल हुई हैं । १९७६ में 'कादम्बिनी' द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय गीत एवम् काव्य प्रतियोगिता' में इनका गीत पुरस्कृत हुआ तथा १९७८ में उनकी काव्य-रचना 'लौटा दो पगडंडियां' के लिए उन्हें 'आशीर्वाद' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

कुमार रवीन्द्र के गीतों में सामयिक सन्दर्भों की विस्तृत एवम् विशिष्ट समायोजना है । काल्पनिकता के आधार पर यथार्थ को स्थापित करने के यथेष्ट प्रयास उन्होंने किये हैं । इनके गीतों का भाव-बोध के धरातल पर ही नहीं, शब्द और शिल्प के स्तर पर भी एक अलग भाव-व्यक्तित्व होता है । कुमार रवीन्द्र के गीतों का अधिकांश स्वर सरल और सौम्य हैं, कठोर और व्यंग्यात्मक स्थितियाँ कवि-मन के अनुकूल नहीं पड़ती -

''खेल वहीं हैं अब भी
सिर्फ खिलौने बदल गये ।
बदले हैं हथियार
किन्तु
आखेट वही हैं
आदिम मन की भूख

गुफाएं ठेठ वहीं हैं ।
-.-वहीं शिकारी-वृत्ति
सिर्फ़ मृगछौने बदल गये ।''[४३]

कुमार शिव :

कुमार शिव अर्थात् शिवकुमार शर्मा का जन्म सितम्बर ११४५ में कोटा, राजस्थान में हुआ था। बी.काम., एम.ए. और एल.एल.बी. करने के बाद वकालत करने लगे । अपनी रचनाओं का आरम्भ उन्होंने १९६५ से किया था जो अब भी प्रवाहमान है । उनके प्रमुख प्रकाशन 'शंख... रेत के चेहरे' (गीत संग्रह-१९७३) तथा 'पंख धूप के' (ग़ज़लें एवं दोहे-१९७७) हैं । इनकी अनेक रचनाएं समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं । कुमार शिव 'नवगीत' को 'भीड़ और सूनेपन की ईमानदार अभिव्यक्ति' मानते हैं जो कल्पना के पंख लगाकर हवा में नहीं उड़ता, बल्कि नंगे पांव धूप तपी चट्टानों, रेतों पर चलता है और जन-सामान्य बोलचाल के शब्दों में परिवेश को अभिव्यक्त करता है । वे लिखते हैं - ''आत्माभिव्यक्ति, लय और गेयता की रंगीन रेखाएं नये से नये प्रतीकों में बँधकर जीवन के तपते धरातल पर एक इन्द्र-धनुष को जन्म देती हैं और इसी का नाम है नवगीत ।''[४४]

कुमार शिव के नवगीतों में सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, आक्रोश, पारिवारिक समस्याओं, अतीत की यादों और वर्तमान परिस्थितियों का सहज एवं यथार्थ चित्रांकन दिखाई पड़ता है । वर्तमान स्थितियों में मानवीय सम्बन्ध कितने दयनीय हो चुके हैं, इसका निरूपण निम्न गीत-पंक्तियों में देखा जा सकता है -

''कात रहे हम दिन कपास-से ।
''नाच रहे हम
तकली जैसे,
बज उठते हैं
ढपली जैसे;
हंसते हैं पर हैं उदास से ।
लिए पुस्तिका
परिवादों की,
जिल्द बंधी है
अवसादों की;
कटे हुए हैं आस-पास से ।
मित्रों ने
उपकार किया है,
नागफनी-सा
प्यार दिया है;

सब खाली बोतल-गिलास-से ।"[४५]

आदमी को भविष्य के प्रति सचेत और सावधान करते हुए कवि कहता है -

नाव मिट्टी के लिए
तट पर खड़े हैं दिन !
गले कागज़-सी सुबह है
कब मुड़ेगी, क्या पता कब
टूट जाएगी ।
ज़िन्दगी है रेलगाड़ी-सी
कब रुकेगी, क्या पता कब
छूट जाएगी ।
धुएं की बैसाखियां लेकर
बढ़े हैं दिन ।"

कुमार शिव नवगीत-दशक-२ में प्रस्तुत अपने दृष्टि-बोध में लिखते हैं - गीत लिखना मेरे लिए विवशता है । गीत एक विशेष मनःस्थिति का देन होता है । कई बार गीत पूर्ण करके भी संतुष्टि नहीं मिली है, जैसे जो कुछ कहा जाना था, शब्द उन्हें पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर सके ।' वह मानते हैं कि, छन्द में बँधकर गीत आज की जीवन शैली को ईमानदारी से अभिव्यक्त कर रहा है । गीत का दर्पण इतना चमकदार व संवेदनशील है कि, परिवेश का कोई भी अक्स इससे बचा नहीं रह सका है ।

योगेन्द्र दत्त शर्मा :

अगस्त १९५० में गाजियाबाद में जन्मे योगेन्द्रदत्त शर्मा ने हिन्दी से एम.ए. तथा गणित से एम.एस.सी. करने के बाद 'साठोत्तर गीति-काव्य में सेवदना और शिल्प' विषय पर शोध-कार्य सम्पन्न किया । केन्द्रीय सूचना में कार्यरत हुए नियमित रूप से लेखन-कार्य से वे जुड़े रहे । इनका रचनाकाल १९६८ ई. से आरम्भ होता है । साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवगीत, सारिका, दैनिक हिन्दुस्तान, नंदन, नवभारत टाइम्स, पराग, आजकल, योजना, कुरूक्षेत्र, गगनांचल, शोध-स्वर, अनन्या, गवाह, दीर्घा, संचेतना, समयान्तर और नवगीत आदि पत्र-पत्रिकाओं में गीत, ग़ज़ल, कविता, कहानी, काव्य, नाटक, लेख, समीक्षा तथा अनुवाद आदि प्रकाशित होते रहे हैं । आकाशवाणी औ दूरदर्शन से भी इनकी रचनाओं का प्रसारण होता रहा है । भारत सरकार की पत्रिका 'आजकल' में चार वर्ष तक इन्होंने सम्पादकीय सहयोग प्रदान किया ।

योगेन्द्रदत्त शर्मा गीत-रूप में लिखी गई उत्कृष्ट रचना को सर्वोपरि मानते हैं । "संवेदना और रागात्मकता महत्वपूर्ण तथ्य हैं जो काव्य को सार्थक बनाते हैं । गीत में ये दोनों ही तत्व अधिक तीव्रता और प्रखरता के साथ उभर कर आते हैं । यों हर संवेदना की सीमाएँ हैं और रचना के समय ये अपनी सीमा के अनुरूप आकार ग्रहण करती हैं । मसलन, एक संवेदना-विशेष केवल छन्दमुक्त कविता

में ही अभिव्यक्त हो सकती है, तो दूसरी संवेदना-विशेष गीत में ही अभिव्यक्त पा सकती है । यह संवेदना के मिज़ाज पर ज्यादा निर्भर करनेवाला प्रश्न है ।''[४६] मानवीय संवेदना को सूक्ष्म अभिव्यक्ति देने में कवि सफल रहा है । रोमांटिकता को कवि ने कविता की विशिष्टता माना है । कवि का यह भी मानना है कि, नवगीत का पूरा बिम्ब-विधान और प्रतीकात्मकता यथार्थमुखी रोमांटिकता की ही उपज है । बिम्बों की सघनता और प्रचुरता नवगीत की प्रमुख प्रवृत्ति है ।

योगेन्द्र दत्त शर्मा के गीतों में मनुष्य और समाज की विभिन्न समस्याओं को यथासंभव अभिव्यक्ति मिली है । व्यक्तिगत पीड़ा के स्थान पर नवगीत में सामाजिक त्रास का स्वर मुखर हुआ है -

''बस्तियों में कांच-सा मन
टूट जाता है,
गांव जब पीछे शहर से
छूट जाता है !
वह घना कुहरा
सुबह का
शाम का गहरा धुंधलका,
गुनगुनी दुपहर
अंधेरी
रात का गुमसुम तहलका;
रेत में आकर नदी-सा
गुनगुनाता है !
बीच आंगन में खड़ी
तुलसी
स्वयं अपराजिता-सी,
वत्सला अमराइयां
वह छांह
पीपल की-पिता-सी
एक झोंका स्नेह का मन
गुदगुदाता है ।''[४७]

व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता अथवा निजता को त्यागकर सामाजिक इकाई के रूप में उभरा है । योगेन्द्रदत्त शर्मा के गीतों में बिम्बों व प्रतीकों का सहज समावेश हुआ है, आरोपण कदापि नहीं प्रतीत होता-

''चांदनी ने गंध अपनी
कौड़ियों में बेच दी है,
आज की यह त्रासदी है !
रोशनी का

धुंध के वातावरण से सामना है,
बिम्ब को पीता हुआ
लगता यहां हर आइना है;
सभ्यता के मोड़ पर
सहमी हुई मन की नदी है ।''[४८]

नवगीत के सन्दर्भ में कवि लिखता है - ''ग्राह्य आधुनिकता को वरण करके भी नवगीत, वरेण्य परम्परा की ओर उन्मुख हुआ है - ऐतिहासिक और पौराणिक मिथक संदर्भों से आज की संवेदना को जोड़ने का प्रयास इस तथ्य का ठोस प्रमाण है । आज नवगीत इस बिन्दुपर सहज-विश्वास-क्रम में आया है।

विजयकिशोर तिवारी :

कानपुर, उत्तरप्रदेश में अक्टूबर १९५० में जन्मे श्री विजय किशोर 'मानव' ने प्रारम्भिक एवम् माध्यमिक शिक्षा कानपुर से तथा स्नातक (बी.एससी.) आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्त किया । आप लगभग ग्यारह वर्षों तक पत्रकारिता में संलग्न रहे तत्पश्चात हिन्दी दैनिक 'दैनिक जागरण' के साप्ताहिक परिशिष्ट में साहित्य सम्पादक के रूप में भी कार्यरत रहे । १९६८ से वे अनवरत रूप से काव्य,कहानी, निबन्ध एवम् उपन्यास लेखन से जुड़े रहे हैं । हिन्दी की लगभग सभी प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं, विशेष रूप से धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, सारिका और रविवार में आपकी रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है । आपके गीतों का प्रसारण भी आकाशवाणी और दूरदर्शन से होता रहा है ।

रचना-धर्म को लेकर कवि की मान्यता कि, ''लेखन मेरी दृष्टि में समाज का अनिवार्य सांस्कृतिक संस्कार है । 'संस्कार' मूल्यों की रक्षा का निर्वहन कराता है । जहां कहीं इसका अतिक्रमण होता है, वहीं किसी रचनाकार का प्रेक्षक और फिर आकार देने का उसका धर्म सक्रिय हो उठता है ।''[४९] कवि की स्पष्ट मान्यता है कि गीत या नवगीत किसी-न-किसी रूप में भारतीय समाज और जमीन से जुड़ा हुआ है - ''गीत किसी-न-किसी रूप में भारतीय समाज के जीवन में जन्म से मृत्युपर्यन्त हर कहीं प्रतिष्ठित है । उसका कारण है, भारतीय जीवन में लय का 'सिस्टम' और नियमों की अबाध उपस्थिति। रचना में यह सौन्दर्य जहां प्रतीकों एवम् बिम्बों से आता है, वही परिवेश के जीवन्त दृश्यों और मुहावरों से ग्राह्य एवम् प्रभावशाली सहजता भी आती है । नवगीत यही कहीं आकर पारम्परिक गीत और छन्दमुक्त कविता को काफ़ी पीछे छोड़ता है ।... नवगीत व्यापक होने के नाम पर शुष्कता नहीं ओढ़ता । भीतर से तरल किन्तु ब्लेड की तरह धारदार नवगीत, प्रेम के वासनात्मक प्रसंगों से लेकर विश्व-राजनीति और कहीं भी हो रहे मानवता के ह्रास तक के क्षितिजों को अपने में समेटता है । वस्तुतः पुरानी गीति-धरोहर और विघटित होते मूल्यों के बीच जो संवेदक सेतु नवगीत ने बनाया है, उससे वह युगकाव्य की उपयुक्त विधा बन गया है । हां, अभी हम चौराहे से कुछ रास्तों पर बढ़े भर हैं, लम्बी यात्रा और बड़ा काम बाकी है ।''[५०]

विजय किशोर की रचनाओं में समाज के सभी वर्गों की सोच और संवेदना को पर्याप्त अवसर मिला है । आम आदमी भी इतना कुंठित और ईर्ष्यालू बन चुका है कि वह स्वयं किसी अन्य आदमी को अपने समक्ष आगे बढ़ता नहीं देख सकता । वह स्वयं तो कुछ कर नहीं सकता, दूसरों की भी

प्रगतिशीलता में बाधक बन जाता है । सभी नकली चेहरे लिए घूम रहे हैं । कवि ने निम्न नवगीत-पंक्तियों के माध्यम से मनुष्य की इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है -

"अक्षर-अक्षर स्याही आंजे
रंग पुते चेहरे
हमें मिली हैं चीखें, सुनने
वाले हैं बहरे,
बाहर से मुस्कानें लगतीं
चोटें भीतर की ।
खुले आम चुन दिये गये
पूरे के पूरे हम,
कोई रहे मदारी अब तो
सिर्फ़ जमूरे हम ।
हम झूठे ही मरे, लाख
कसमें खायीं सर की ।"[५१]

शहरों की व्यस्त ज़िन्दगी, टूटता हुआ आदमी और उसकी संत्रस्त मनोदशा की अदभुत छवियाँ विजयकिशोर के गीतों में दिखायी पड़ती है -

"रूखा-सूखा मिले यहां जो भी
बस वह खाना ।
तोते से कहती है मैना
अब न शहर जाना ।
उजले-उजले चेहरे सबके
भली-भली पोशाकें,
सबकी बन्द आस्तीनों से
सांप सैकड़ों झांके;
सोने के पिंजरे मानिक की बोली
पंख कटे
और बिल्लियों का घर में
अकसर आना-जाना ।"[५२]

इसी तरह कवि ने गांव, खेत, खलिहान, किसान, मजदूर, बाग-बगीचे पशु-पंछी आदि को स्वभावतः अपने गीतों में समाहित किया है । गाँव के किसानों की स्थिति कितनी बदतर हो चुकी है, इसकी एक झलक विजय किशोर के निम्न गीत-पंक्तियों में देखी जा सकती है -

"दरवाजे अपने हैं, ताले गैरों के,
आंगन में हिस्से हैं नत्थू-खैरों के ।

अपने खेत, फसल अपनी
खलिहान दूसरों के,
माथे पर उपजाऊ लिखना
पड़े, ऊसरों के;
नंगी पीठों पर अरसे से बने हुए
मिटते नहीं निशान बड़ों के पैरों के ।''[५३]

डॉ. सुरेश :

सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव का जन्म दिसम्बर १९५१ में अमेठी, उत्तर प्रदेश में हुआ था । हिन्दी से एम.ए. करने के बाद उन्होंने एल.एल.बी. और फिर हिन्दी से पीएच.डी. भी किया । कुछ समय तक अधिवक्ता के रूप में कार्यरत रहने के पश्चात ये अध्यापन कार्य से जुड़ गये । वर्तमान में स्वतन्त्र रूप से लेखन-कार्य में संलग्न हैं । इनकी रचनाओं का प्रकाशन देश की प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं, धर्मयुग, रविवार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी और साहित्यिक लघु पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहें हैं । आकाशवाणी और दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों से उनके गीतों का प्रसारण भी होता रहा है । एक गीत-संग्रह, नवगीत-संकलन एवम् शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं ।

डॉ. सुरेश गीत को काव्य की मूल और कालजयी विधा मानते हैं । उनका मानना है कि आधुनिक जीवन की विसंगतियों, घुटन, टूटन तथा पीड़ा को अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण नवगीत में की जा सकती है यद्यपि रचनाकार को नवगीत के प्रति अपने आपको पूर्णतः समर्पित करना होगा । भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण रखनेवाले तथाकथित रचनाकारों की आलोचना करते हुए कवि कहता है - ''विडम्बना यह है कि नवगीतकार तो 'जेनुइन' नयी कविता को स्वीकार करते हैं पर नयी कविता के ख्यातिलब्ध और स्तम्भ कवि और आलोचक नवगीत को स्वीकार करना तो दूर, गीत-विधा को ही स्वीकृति देने को तैयार नहीं है, यद्यपि नयी कविता के ही अधिकतर कवियों ने नवगीत की संज्ञा दी जा सकती है । उनकी गीतात्मक प्रतिभा को भुला देने का अर्थ है, नयी कविता और नवगीत के संयोगात्मक तथा संश्लेषणात्मक स्थिति को अस्वीकार करना । यदि वे नवगीत के प्रति अपने द्वेष के कारण ऐसा करते हैं तो इसकी प्रतिक्रिया नवगीतकारों में भी होना स्वाभाविक है । अनेक नवगीतकार 'नयी कविता' के भी समर्थ कवि रहे हैं और अब भी हैं; फिर भी यदि नयी पीढ़ी के नवगीतकार अपनी प्रतिक्रिया को नयी कविता की पूर्णतः अस्वीकृति के रूप में व्यक्त करें तो इसका दोष नयी कविता के उन आलोचकों के सिर ही मढ़ा जाएगा जो द्वेषवश नवगीत को अस्वीकार करते हैं ।... मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि पिछले तीन दशकों में नयी कविता का जो वर्चस्व रहा है वह अब समाप्त हो रहा है और नवगीत उस वर्चस्व का अधिकारी बन चुका है ।''[५४]

सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव के नवगीतों में मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों का बड़ा ही मार्मिक एवं सहज निरूपण हुआ है । पारिवारिक टूटन, घुटन, रिश्तों में पड़ी दरारों तथा कसमें-वादों की खत्म होती जा रही अहमियत को कवि ने इन पंक्तियों में स्वाभाविक रूप से उकेरा है -

"टुकड़े-टुकड़े नाते-रिश्ते
धज्जी-धज्जी प्यार,
हुई ज़िन्दगी बनिये के
खाते की रकम उधार,
मौत भेजती
रोज़ तकादे
कोई फ़र्क नहीं ।
अखबारों की रंगी सुर्खियाँ,
बड़बोलों की बात,
सूरज सोया गोदामों में
ठहरी काली रात,
झूठी कसमें
झूठे वादे
कोई फ़र्क नहीं ।"[५५]

जलते हुए गाँव और वीरान होते जा रहे जंगलों, घाटियों और पर्वतों का मर्म रचनाकार के अन्तर्मन को संस्पर्श करता प्रतीत होता है -

"दूर से चलकर
बहुत खुश था मिलेगी छाँव
क्या खबर थी और भी
जलते मिलेंगे गाँव ।
घाटियों में, जंगलों में
उन पहाड़ों में
चुप नहीं, शामिल रहा
मैं भी दहाड़ों में
दर्द से हारे नहीं
ये लड़खड़ाते पाँव ।"[५६]

इस तरह शहरी संत्रास, दूषित होती जा रही संस्कृति, भविष्य के प्रति चिन्ता कवि की रचनाओं में स्वभावतः चित्रांकित हुई है ।

राजेन्द्र गौतम :

हरियाणा के जीन्द जनपद में सितम्बर १९५२ में जन्मे श्री राजेन्द्र गौतम ने पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। १९७५ से इन्होंने रामलाल आनन्द कालेज (सान्ध्य) दिल्ली में हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में कार्यभार सँभाला । उनके गीतों का रचनाकाल १९७४-७५ से आरम्भ होता है । एक स्वतंत्र गीत-संग्रह- 'गीत

पर्व आया है' तथा एक सहयोगी काव्य-संकलन 'कवि अनुपस्थित है' प्रकाशित हो चुका है। राजेन्द्र गौतम की समीक्षा पुस्तक - 'हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास' भी प्रकाश में आ चुकी है। इनकी अनेक रचनाएँ धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, नवनीत, सरस्वती, दैनिक हिन्दुस्तान, नयी धारा, आज, कंचनप्रभा, आजकल, ट्रिब्यून, अमर उजाला जागृति, हिमप्रस्थ, उत्तर प्रदेश आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इनके अतिरिक्त सम्मेलन-पत्रिका, नागरी-पत्रिका, मधुमति, सप्तसिन्धु तथा शोध स्वर में लगभग पच्चीस शोध-निबन्ध भी प्रकाशित हो चुके हैं।

नवगीत के सन्दर्भ में राजेन्द्र गौतम कहते हैं - "सामयिक सर्जन के स्वरों की यदि सही पहचान की जाय तो यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि नवगीत प्राणवान् कविता का ही प्रतिरूप है। साहित्य मूल्य-निरपेक्ष एवम् अनुत्तरदायी कभी नहीं हो सकता। नवगीतकार अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत है। नवगीत में ग्राम, नगर, महानगर आदि के स्तर पर चेतना का विभाजन नहीं है। उसने जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण कर वाणी दी है।"[५७]

राजेन्द्र गौतम के गीतों में सामयिक बोध की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप में मुखरित हुई है। इनके गीत अपनी सांस्कृतिक गरिमा, कलात्मक प्रौढ़ता एवम् संवेदनात्मक गेयता के द्वारा रसज्ञ-पाठकों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। उनके कथ्य ही नहीं, उनकी काव्य-भाषा भी निजी रचनात्मक उष्मा में तपी है। उनके गीतों के शिल्प की बिम्बात्मक विशिष्टता को संकेतित करनेवाली कुछ पंक्तियाँ देखें -

"उड़ गयीं
पगडंडियों से
खुशबुएँ अब आहटों की
सांझ के मैले पगों में
कील-सी चुप्पी गड़ी है
अनमनी-सी मौनलीना
यह अरण्यानी खड़ी है
मुड़ सिवानों में गयी है
धेनुएं अब आहटों की"[५८]

राजेन्द्र गौतम के गीतों में युगीन परिस्थितियों, हर्ष-विषाद, विरूप, विसंगत एवं त्रासद स्थितियों का चित्रण स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन समस्त विभीषिकाओं के मध्य संघर्षरत आस्थावान सर्जक का स्वर भी इन रचनाओं में मुखरित हुआ है। आर्थिक, सामाजिक एवम् राजनैतिक शोषण की मुखौटाधारी विसंगतियों पर यदि इनमें गहरी चोट है तो प्रकृति का सहज सौन्दर्य और पारिवारिक स्नेह की छवियाँ भी देखी जा सकती हैं। समकालीन मानवीय संवेदना को सहजता से उकेरती 'विपर्यय' गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"वन में फूले अमलतास हैं
घर में नागफनी

हम निर्गन्ध पत्र-पुष्पों को
दे सम्मान रहे,
गन्धों के जीवन्त परस से
पर अनजान रहे
सुधा कलश लुढ़काकर मरु में
करते आगजनी ।''[५९]

काव्य की भाषा के सन्दर्भ में कवि का मानना है - ''जीवन्त काव्य-धारा नित्य भाषा की नयी शक्तियों का उद्घाटन एवं अन्वेषण करती रहती है क्योंकि भाषा में संवेदना के संवहन की क्षमता एक सीमा तक पहुंचने के बाद क्षीण होने लगती है । अतः प्रत्येक समर्थ रचनाकार स्वयं को आवृत्ति से बचाता हुआ शिल्प के भाषिक उपकरणों को नित्य नवीनता प्रदान करता है । शिल्प के स्तर पर भाषा की आंतरिक उर्जा, दिगन्तों को झंकृत करने वाले लयों के आवर्त, बिम्बों की राग-दीप्त एवं सन्दर्भापेक्षी विविधता, शब्दों का युगानुरूप संस्कार, पाठक को संवेदना के स्तर पर छूने वाला अप्रस्तुत विधान नवगीत की सर्वोपरि उपलब्धि है । अभिव्यंजना के स्तर पर नवगीत ने पाठक से कटने की अपेक्षा उससे जुड़ने का प्रयत्न किया है ।... इसमें संदेह नहीं कि 'नवगीत' आने वाले कल का प्रतिनिधि काव्य होगा ।''[६०]

राम सेंगर :

राम बाबू सेंगर का जन्म जनवरी १९४५ में अलीगढ़ के नगलाआल नामक स्थान पर हुआ था। विज्ञान में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण कर लेने के पश्चात ग्वालियर से लैदर टेक्नॉलॉजी में डिप्लोमा तथा इसी क्षेत्र में सेन्ट्रल लैदर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मद्रास से ऐडवान्स प्रशिक्षण प्राप्त किया । जबलपुर विश्वविद्यालय से स्नातक (बी.ए.) की उपाधि प्राप्त करने के बाद मध्य रेलवे में स्टेशन क्लर्क के व्यवसाय से जुड़ गए ।

इनकी रचनाओं का प्रकाशन समय-समय पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में होता रहा है तथा आकाशवाणी से इनकी रचनाओं का प्रसारण भी होता रहा है । दो नवगीत संग्रहों - 'शेष रहने के लिए' तथा 'रेत की व्यथा-कथा' के अतिरिक्त एक कहानी संग्रह - 'मुसकान की तह में' भी प्रकाशित हो चुकी है ।

राम सेंगर समसामयिक यथार्थ की घुटन, विक्षोभ, बेचैनी तथा सारे परिवेश जन्य तनावों एवम् अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का सबसे कारगर और मुकम्मल माध्यम गीत को ही मानते हैं । कवि गीतों में अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त कर देने का पक्षधर है । नये प्रतीकों एवम् बिम्बों के लिए उसने अतिरिक्त प्रयत्न नहीं किये हैं । प्रतीक या बिम्ब सहजता से अभिव्यक्ति के दौरान स्वयमेव उपस्थित होते चले गये हैं ।

जीवन के सामयिक पक्षों से कटकर कवि ने लिखने का प्रयत्न नहीं किया है बल्कि समयगत सच्चाइयों की उफनती नदी के प्रचण्ड प्रवाह में अपने आपको पूर्णतः समेट कर वास्तविक अनुभूतियों

को अभिव्यक्ति देने का प्रयास कवि ने किया है -

"बहते हम लोग
पानी पर तेल की तरह ।
अपरिक्षित सत्यों से
सीधा साक्षात्कार करते ।
निर्वासित मन लेकर
रोज अंध घाटियाँ उतरते ।
रहते हम लोग
वक्त को रखेल की तरह ।"[६१]

अनुभूति की तीव्रता से बेदम हुआ कवि का घुटन-भरा अहंकार अभिव्यक्ति का कोई सत्ता न पाकर कभी-कभी चीखने को हो आता है और आखिरी छोर तक धकेल दिये जाने की भावना से उत्पन्न मौन क्रोध में वह अपनी हथेलियों को बड़ी बेरहमी से रगड़ता है । चेतना के इस विक्षोभ की संवेदना को ही वह अपने भीतर की सारी जड़ता और समाधिस्थता को तोड़ते हुए एक युगीन यथार्थबोध मानकर अपने गीतों में अभिव्यक्त करता है -

"प्यास हुई ताड़ से बड़ी
नीड़ से धुआं निकल रहा ।
हलचल में
छूट-सा रहा
दे पाना अपना ही साथ ।
देह धर्म नाम कोढ का
साक्षी हैं लूले ये हाथ ।"[६२]

राम सेंगर लिखते हैं कि, 'कथ्य की दृष्टि से गीत को नया बनाने में जिन दृष्टि-सम्पन्न रचनाकारों के प्रयत्नों से नवगीत लेखन की एक स्वस्थ परम्परा निर्मित हो रही है, उनके प्रति मेरे मन में एक अटूट विश्वास है ।... यद्यपि नयी कविता की अपनी संवेदना है, अपना शिल्प है, तथापि मैं यह मानता हूँ कि वह सम्पूर्ण बिखराव की स्थिति में है तथा जनता का साामना करने से वह कतराती है । भारतीय जनमानस ने उसे पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया है तथा वह महज कुछेक पत्रिकाओं के सहारे ज़िन्दा है । मैं गीत के भविष्य के प्रति पूर्णरूपेण आश्वस्त हूँ तथा मेरा विश्वास है कि एक दिन वह साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा के रूप में पुनः स्थापित होगा ।'[६३]

दिनेश सिंह :

नवगीत के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में दिनेश सिंह का अग्रगण्य स्थान है । सितम्बर १९४७ में उत्तर प्रदेश के राय बरेली जिले में उदित दिनेश सिंह १९६५ से आज तक गीतों से अनवरत जुड़े रहे हैं। उत्तर प्रदेश शासन के स्वास्थ्य-विभाग में सेवारत रहते हुए भी उन्होंने कई महत्वपूर्ण रचनायें की । अज्ञेय

द्वारा सम्पादित 'नया प्रतीक' में उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई । तत्पश्चात धर्मयुग, मधुमती, वागर्थ आदि अन्य पत्रिकाओं में उनके गीत प्रकाशित होने लगे । डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने 'नवगीत दशक-३' में दिनेश सिंह के गीतों को शामिल किया । उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'पूर्वाभास' १९७५ में प्रकाशित हुआ था । प्रतिष्ठित त्रैमासिकी पत्रिका 'नये-पुराने' का १९७७ से सम्पादन करते हुए उन्होंने गीत-रचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, और सराहनीय उपलब्धियाँ हासिल की है ।

नवगीत-रचना के सम्बन्ध में दिनेश सिंह लिखते हैं - "आधुनिक गीत या नवगीत काव्य की विलुप्त 'सटीक लय' की खोज का परिणाम है । सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के संघातों में अनुभूतियों के क्षण-क्षण बदलते स्वरूप को गीत सहज ही ग्रहण करते चलते हैं जबकि गीतेतर कविता में यह परिवर्तन बहुत बाद में महसूस किया जाता है और तब उसकी जड़ता को किसी नये आन्दोलन से तोड़ना होता है । नयी कविता कि पिटी तेवर बाजी, एक ही तर्ज में अरसे से एक-सी बोली जाने वाली भाषा, आधुनिकता की जिस जड़ता का रचाव कर रही है, उसे तोड़ते हैं ये नये गीत। इनकी तरलता में धार है, इनकी सघनता में वजन और मार में तो क्षेप्यास्त्र हैं ही ।... प्रेषणीयता, बोधगम्यता के साथ ही संवेदना की आंतरिक तरलता इन गीतों की विशिष्टता और वैभव है .... नवगीत का संसार पूर्ण संवेदना का संसार है । भावना में रसे-पके गीतों का रिश्ता अधिक अर्थों में आदमी के दुःख दर्द, उसकी निराशा-हताशा से होता है । इसीलिए नवगीत बाहर से सौन्दर्य-प्रेमी नहीं लगते; पर उनमें जो सौन्दर्य है, वह रूपवाद के दुराग्रह से प्रेरित न होकर स्थितियों का सूक्ष्म अभिनव-सौन्दर्य है ।... नवगीत का संसार पूर्ण संवेदना का संसार है । भावना में रसे-पके गीतों का रिश्ता अधिक अर्थों में आदमी के दुःख-दर्द, उसकी निराशा-हताशा से होता है । इसीलिए नवगीत बाहर से सौन्दर्य-प्रेमी नहीं लगते; पर उनमें जो सौन्दर्य है, वह रूपवाद के दुराग्रह से प्रेरित न होकर स्थितियों का सूक्ष्म अभिनव-सौन्दर्य है ।... नवगीत इतना संवेदनशील है कि, वह मौसम के किसी तात्कालिक परिवर्तन के प्रभावी क्षण को अपनी लय में तुरन्त ग्रहण कर लेता है ।"[६४]

दिनेश सिंह के गीतों का प्रमुख आधार आम आदमी और उससे जुड़ा हुआ समाज है । कवि के लिए गीत-रचना एक सुखद अनुभव है । कवि ने इस बात की कड़ी आलोचना की है कि, 'जटिल स्थितियों की अभिव्यक्ति में गीत असमर्थ हो जाते हैं या कमजोर पड़ जाते हैं ।' कवि मानता है कि, नवगीत जटिल से जटिलतम परिस्थितियों की अभिव्यक्ति या सशक्त माध्यम है । यह अभिव्यक्ति चाहे ग्राम्य-जीवन से सन्दर्भित हो या फिर शहर के सन्त्रास से क्षुब्ध सामान्य व्यक्ति के संघर्षरत जीवन से लिया गया है । कवि की एक मार्मिक रचना देखें -

"टपरे की ओरी के नीचे
'मुनिया' के हाथों से सींचे
नेहा के बीज गड़े हैं
मुनिया के प्राण जड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल !
भीतर ये प्राण पसीजेंगे
अपने ही जल में भीजेंगे

चुपके-चुपके, नीचे-नीचे
मन की नाज़ुक पर्तें तोड़कर
वे देखो फूट पड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल !"[६५]

विनोद निगम :

विनोद निगम का नाम समकालीन नवगीतकारों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित हो चुका है । उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जनपद में फरवरी १९४५ में जन्म लिये विनोद निगम ने नवगीत-काव्य में अपनी पृथक पहचान अर्जित की है । वह आरम्भ से ही अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे हैं तथा वर्तमान में 'शासकीय गृहविज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद में' 'हिन्दी-प्राध्यापक' के पद पर कार्यरत हैं । उनकी रचनाओं का आरम्भ १९६५ ई. से होता है । 'जारी है लेकिन यात्राएँ' काव्य-संग्रह मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित हो चुका है । देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं का प्रकाशन जब-तब होता रहा है ।

विनोद निगम 'नवगीत' को आधुनिक हिन्दी कविता की प्रतिनिधि धारा मानते हैं । वे कहते हैं कि, 'नवगीत सम्पन्नतम भारतीय संस्कृति की प्रासंगिक परम्पराओं और अंतरीक्षयुगीन त्वरित एवं जटिल मानवीय चेतना के समन्वय की ईमानदार अभिव्यक्ति है । उसने अपरिचित एवम् अबूझ बियावानों में निरुद्देश्य भटकती हिन्दी-कविता के रथ को आत्मीय बस्तियों की ओर मोड़ दिया है ।'

विनोद निगम के गीतों में युगजीवन के आक्रोश, बेचैनी, कुण्ठाओं, भ्रष्टतंत्र से उत्पन्न विक्षोम, महानगरीय अजनबीपन से पनपी घुटन एवम् बेबसी, ग्रामीण जीवन में नगरीय आकर्षण से विकसित विसंगतियों एवम् सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मोर्चों पर प्राप्त उपलब्धियों एवम् निराशा अदि का संश्लिष्ट चित्रण दिखाई पड़ता है -

"सड़कों में कोई रस है
जाने क्या हो जाता है !
अपनों में ऊब रहा मन
आँगन में डूब रहा मन
सड़कों में खो जाता है !
घर में गतिहीन हुए हम,
सड़कों में यात्राएं हैं,
फूलों-सी खिलखिलाहटें
भूख की तमाम आहटें
पान में चबाते चरचे
कुछ दायें, कुछ बायें हैं ।
सड़कों पर वह भी तो है,
धूप हवा बारिश सिर पर

जो लादे चलता तनकर,
जो सड़कों को बौना कर
सड़कों में सो जाता है ।''[६६]

अपने आत्मकथ्य में विनोद निगम लिखते हैं - ''गीत मेरे लिए यात्रा होते हैं, अपनी तमाम थकान, कष्ट एवम् कठिनाइयों के साथ जिसमें दृश्यों के बदलते रहने का एक आनन्द भी शरीक होता है । इन गीतों में भी एक यात्रा-सुख है - गाँवों, कस्बों या नगरों के बीच रहते और गुज़रते हुए जो कुछ भी मेरे आस-पास होता रहता है, मित्र होते हैं या घटनाएँ या फिर भूख को केन्द्र में रखते हुए अनेक जारी संघर्ष और इन सबके ऊपर पत्तों की तरह चढ़ता-उतरता मौसम । इन सब की अपनी अनुभूतियाँ हैं जिन्होंने शब्दों को तलाशा है और उन्हें लेकर निकल आयी है । इन गीतों में, इस यात्रा में धूल, पानी, हवा, मौसम, धूप, अंधेरा, फूल और मकान, गलियाँ या सड़कें, कारखाने या ऑफिस अथवा फाइलें या उनसे दबते-निकलते लोग, सभी शामिल हो जाते हैं मेरे साथ ।''[६७]

उपर्युक्त नवगीतकारों के अतिरिक्त डॉ. केदारनाथ सिंह, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. रामदरश मिश्र, शिव बहादुर सिंह 'भदौरिया', नईम, रवीन्द्र भ्रमर, यश मालवीय, घनश्याम अस्थाना, कैलाश गौतम, विद्यानन्दन राजीव, वीरेन्द्र आस्तिक, डॉ. कुँअर बेचैन, सोमठाकुर, किशन सरोज, अशोक अन्जुम, शीलेन्द्र सिंह तथा डॉ. शान्ति सुमन जैसे प्रतिष्ठित एवं सशक्त रचनाकारों ने भी, जिनमें से अधिकांश आज भी नवगीत के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं, नवगीत-यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ प्रदान की हैं ।

वस्तुतः नवगीत का सृजन सामयिक संदर्भ में एक खुली हुई जंग है जिसमें आम आदमी की हिमायत लेकर नवगीतकार नवयुग की क्रांति का बिगुल बजाता है, वह साम्राज्यवादी शक्तियों, राजतंत्रों एवं इजाराशाही हुकूमतों के खिलाफ इन्कलाब बुलन्द करता है । वह अपने पूरे होशोहवास में और लेखकीय ईमानदारी के साथ इस जंग में शामिल होता है, नवगीत की सहज प्रवृत्ति गांव-देहात-तहसील और अन्त्यज कुटियों की सांस्कृतिक-धरोहर संभालते हुए विकसित नागर संस्कृति के विद्रूप से बचने और विघटन करने की भूमिका के साथ जुड़ी है । प्रस्तुत अध्ययन में अनेक कोणों से इन तथ्यों को रेखांकित किया गया है ।

संदर्भ सूची :-

१. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ २३६
२. डॉ. सुरेश गौतम : नवगीत-इतिहास और उपलब्धि, पृष्ठ ७३
३. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : विमर्श (१९७२), पृष्ठ ६७
४. राजेन्द्र गौतम : हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास, पृष्ठ २२९
५. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ १३३
६. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ १२७
७. वीरेन्द्र मिश्र : अविराम चल मधुवंती - भूमिका
८. सुरेश गौतम : नवगीत : इतिहास और उपलब्धि, पृष्ठ ७५
९. वीरेन्द्र मिश्र : झुलसा है छायानट धूप में
१०. डॉ. उमाशंकर तिवारी : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ६९
११. उमाशंकर तिवारी : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ७०
१२. जलते शहर में, पृष्ठ १
१३. नवगीत दशक-२, पृष्ठ ७०
१४. माहेश्वर तिवारी : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ११८
१५. वही, पृष्ठ १२५
१६. अमरनाथ श्रीवास्तव : नवगीत दशक-२, पृष्ठ १३०
१७. वही, पृष्ठ १३२
१८. अमरनाथ श्रीवास्तव : भव्य-भारती नवगीत शिखर अंक : सं. विष्णु विराट
१९. वही, पृष्ठ ३५
२०. राजेन्द्र गौतम : हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ २३५
२१. उमाकान्त मालवीय : सुबह रक्त पलाश की, पृष्ठ १७
२२. ओम प्रभाकर, नवगीत दशक-२, पृष्ठ ५७
२३. वही, पृष्ठ ५९
२४. वही, पृष्ठ ६०
२५. सुधांशु उपाध्याय : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ५८
२६. वही, पृष्ठ ६१
२७. गुलाब सिंह : अवकाश, जनवरी १९८०, पृष्ठ ३१
२८. गुलाब सिंह : नवगीत दशक-२, पृष्ठ १०३
२९. वही, पृष्ठ ९४
३०. बुद्धिनाथ मिश्र : नवगीत दशक-३, पृष्ठ १०१

३१. वही, पृष्ठ ११०-१११
३२. वही, पृष्ठ ११४
३३. जहीर कुरेशी : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ८९
३४. वही, पृष्ठ ९४
३५. नवगीत दशक-३, पृष्ठ १८
३६. वही, पृष्ठ २३
३७. अखिलेश कु. सिंह : नवगीत दशक-३, पृष्ठ २२
३८. वही, पृष्ठ २६
३९. अनूप अशेष : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ३३
४०. वही, पृष्ठ ३३-३४
४१. वही, पृष्ठ ४३
४२. अनूप अशेष : वही, पृष्ठ ३५
४३. कुमार रवीन्द्र : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ८७
४४. कुमार शिव : नवगीत दशक-२, पृष्ठ २१
४५. वही, पृष्ठ २३
४६. योगेन्द्र दत्त शर्मा : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ७८
४७. वही, पृष्ठ ८०
४८. वही, पृष्ठ ८१
४९. विजय किशोर : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ६५
५०. वही, पृष्ठ ६६
५१. वही, पृष्ठ ६७
५२. वही, पृष्ठ ७०
५३. वही, पृष्ठ ७१
५४. डॉ. सुरेश : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ४२
५५. वही, पृष्ठ ४८
५६. वही, पृष्ठ ४४
५७. राजेन्द्र गौतम : नवगीत दशक-३, पृष्ठ २९
५८. राजेन्द्र गौतम : गीत पर्व आया है, पृष्ठ ५७
५९. राजेन्द्र गौतम : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ३९
६०. वही, पृष्ठ ३०
६१. राम सेंगर : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ५२

६२. वही, पृष्ठ ५१

६३. वही, पृष्ठ ४६

६४. दिनेश सिंह : नवगीत दशक-३, पृष्ठ ११४

६५. वही, पृष्ठ ११७

६६. विनोद निगम : नवगीत दशक-३, पृष्ठ १२७

६७. वही, पृष्ठ १२६